नमो नमो निम्मलदंसणस्स

बाल ब्रह्मचारी श्री नेमिनाथाय नम:

पूज्य आनन्द-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर-गुरूभ्यो नम:

आगम-१२

औपपातिक

आगमसूत्र हिन्दी अनुवाद

अनुवादक एवं सम्पादक

आगम दीवाकर मुनि दीपरत्नसागरजी

[M.Com. M.Ed. Ph.D. श्रुत महर्षि]

आगम हिन्दी-अनुवाद-श्रेणी पुष्प-१२

आगमसूत्र-१२- 'औपपातिक'

उपांगसूत्र-१-हिन्दी अनुवाद

कहां क्या देखे ?

क्रम	विषय	पृष्ठ	क्रम	विषय	पृष्ठ
१	'समवसरण' वक्तव्यता	०५	२	'उपपात' वक्तव्यता	२६

४५ आगम वर्गीकरण						
क्रम	आगम का नाम	सूत्र		क्रम	आगम का नाम	सूत्र
०१	आचार	अंगसूत्र-१		२५	आतुरप्रत्याख्यान	पयन्नासूत्र-२
०२	सूत्रकृत्	अंगसूत्र-२		२६	महाप्रत्याख्यान	पयन्नासूत्र-३
०३	स्थान	अंगसूत्र-३		२७	भक्तपरिज्ञा	पयन्नासूत्र-४
०४	समवाय	अंगसूत्र-४		२८	तंदुलवैचारिक	पयन्नासूत्र-५
०५	भगवती	अंगसूत्र-५		२९	संस्तारक	पयन्नासूत्र-६
०६	ज्ञाताधर्मकथा	अंगसूत्र-६		३०.१	गच्छाचार	पयन्नासूत्र-७
०७	उपासकदशा	अंगसूत्र-७		३०.२	चन्द्रवेध्यक	पयन्नासूत्र-७
०८	अंतकृत् दशा	अंगसूत्र-८		३१	गणिविद्या	पयन्नासूत्र-८
०९	अनुत्तरोपपातिकदशा	अंगसूत्र-९		३२	देवेन्द्रस्तव	पयन्नासूत्र-९
१०	प्रश्नव्याकरणदशा	अंगसूत्र-१०		३३	वीरस्तव	पयन्नासूत्र-१०
११	विपाकश्रुत	अंगसूत्र-११		३४	निशीथ	छेदसूत्र-१
१२	औपपातिक	उपांगसूत्र-१		३५	बृहत्कल्प	छेदसूत्र-२
१३	राजप्रश्निय	उपांगसूत्र-२		३६	व्यवहार	छेदसूत्र-३
१४	जीवाजीवाभिगम	उपांगसूत्र-३		३७	दशाश्रुतस्कन्ध	छेदसूत्र-४
१५	प्रज्ञापना	उपांगसूत्र-४		३८	जीतकल्प	छेदसूत्र-५
१६	सूर्यप्रज्ञप्ति	उपांगसूत्र-५		३९	महानिशीथ	छेदसूत्र-६
१७	चन्द्रप्रज्ञप्ति	उपांगसूत्र-६		४०	आवश्यक	मूलसूत्र-१
१८	जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति	उपांगसूत्र-७		४१.१	ओघनिर्युक्ति	मूलसूत्र-२
१९	निरयावलिका	उपांगसूत्र-८		४१.२	पिंडनिर्युक्ति	मूलसूत्र-२
२०	कल्पवतंसिका	उपांगसूत्र-९		४२	दशवैकालिक	मूलसूत्र-३
२१	पुष्पिका	उपांगसूत्र-१०		४३	उत्तराध्ययन	मूलसूत्र-४
२२	पुष्पचूलिका	उपांगसूत्र-११		४४	नन्दी	चूलिकासूत्र-१
२३	वृष्णिदशा	उपांगसूत्र-१२		४५	अनुयोगद्वार	चूलिकासूत्र-२
२४	चतु:शरण	पयन्नासूत्र-१		---	----------	-----

मुनि दीपरत्नसागरजी प्रकाशित साहित्य

आगम साहित्य			आगम साहित्य		
क्र	साहित्य नाम	बूक्स	क्रम	साहित्य नाम	बू
1	मूल आगम साहित्य:-	147	6	आगम अन्य साहित्य:-	10
	-1- आगमसुत्ताणि-मूलं print	[49]		-1- આગમ કથાનુયોગ	06
	-2- आगमसुत्ताणि-मूलं Net	[45]		-2- आगम संबंधी साहित्य	02
	-3- आगममञ्जूषा (मूल प्रत)	[53]		-3- ऋषिभाषित सूत्राणि	01
2	आगम अनुवाद साहित्य:-	165		-4- आगमिय सूक्तावली	01
	-1- આગમસૂત્ર ગુજરાતી અનુવાદ	[47]		आगम साहित्य- कुल पुस्तक	516
	-2- आगमसूत्र हिन्दी अनुवाद Net	[47]			
	-3- AagamSootra English Trans.	[11]			
	-4- આગમસૂત્ર સટીક ગુજરાતી અનુવાદ	[48]			
	-5- आगमसूत्र हिन्दी अनुवाद print	[12]		अन्य साहित्य:-	
3	आगम विवेचन साहित्य:-	171	1	તત્વાભ્યાસ સાહિત્ય-	13
	-1- आगमसूत्र सटीकं	[46]	2	સૂત્રાભ્યાસ સાહિત્ય-	06
	-2- आगमसूत्राणि सटीकं प्रताकार-1	[51]	3	વ્યાકરણ સાહિત્ય-	05
	-3- आगमसूत्राणि सटीकं प्रताकार-2	[09]	4	વ્યાખ્યાન સાહિત્ય-	04
	-4- आगम चूर्णि साहित्य	[09]	5	જિનભક્તિ સાહિત્ય-	09
	-5- सवृत्तिक आगमसूत्राणि-1	[40]	6	વિધિ સાહિત્ય-	04
	-6- सवृत्तिक आगमसूत्राणि-2	[08]	7	આરાધના સાહિત્ય	03
	-7- सचूर्णिक आगमसुत्ताणि	[08]	8	પરિચય સાહિત્ય-	04
4	आगम कोष साहित्य:-	14	9	પૂજન સાહિત્ય-	02
	-1- आगम सद्दकोसो	[04]	10	તીર્થંકર સંક્ષિપ્ત દર્શન	25
	-2- आगम कहाकोसो	[01]	11	પ્રકીર્ણ સાહિત્ય-	05
	-3- आगम-सागर-कोष:	[05]	12	દીપરત્નસાગરના લઘુશોધનિબંધ	05
	-4- आगम-शब्दादि-संग्रह (प्रा-सं-गु)	[04]		આગમ સિવાયનું સાહિત્ય કૂલ પુસ્તક	85
5	आगम अनुक्रम साहित्य:-	09			
	-1- આગમ વિષયાનુક્રમ- (મૂળ)	02		1-आगम साहित्य (कुल पुस्तक)	51
	-2- आगम विषयानुक्रम (सटीकं)	04		2-आगमेतर साहित्य (कुल	08
	-3- आगम सूत्र-गाथा अनुक्रम	03		दीपरत्नसागरजी के कुल प्रकाशन	60

મુનિ દીપરત્નસાગરનું સાહિત્ય

1	મુનિ દીપરત્નસાગરનું આગમ સાહિત્ય	[કુલ પુસ્તક 516]	તેના કુલ પાના [98,300]
2	મુનિ દીપરત્નસાગરનું અન્ય સાહિત્ય	[કુલ પુસ્તક 85]	તેના કુલ પાના [09,270]
3	મુનિ દીપરત્નસાગર સંકલિત 'તત્ત્વાર્થસૂત્ર'ની વિશિષ્ટ DVD		તેના કુલ પાના [27,930]

અમારા પ્રકાશનો કુલ ૬૦૧ + વિશિષ્ટ DVD કુલ પાના 1,35,500

[१२] औपपातिक
उपांगसूत्र-१- हिन्दी अनुवाद

सूत्र - १

उस काल, उस समय, चम्पा नामक नगरी थी । वह वैभवशाली, सुरक्षित एवं समृद्ध थी । वहाँ के नागरिक और जनपद के अन्य व्यक्ति वहाँ प्रमुदित रहते थे । लोगों की वहाँ घनी आबादी थी । सैकड़ों, हजारों हलों से जुती उसकी समीपवर्ती भूमि सुन्दर मार्ग-सीमा सी लगती थी । वहाँ मुर्गों और युवा सांढों के बहुत से समूह थे । उसके आसपास की भूमि ईख, जौ और धान के पौधों से लहलहाती थी । गायों, भैसों, भेड़ों की प्रचुरता थी । सुन्दर शिल्पकलायुक्त चैत्य और युवतियों के विविध सन्निवेशों-का बाहुल्य था । वह रिश्वतखोरों, गिरहकटों, बटमारों, चोरों, खण्डरक्षकों-से रहित, सुख-शान्तिमय एवं उपद्रवशून्य थी । भिक्षा सुखपूर्वक प्राप्त होती थी, वहाँ निवास करने में सब सुख मानते थे, अनेक श्रेणी के कौटुम्बिक की घनी बस्ती होते हुए भी वह शान्तिमय थी । नट, नर्तक, जल्ल, मल्ल, मौष्टिक, विदूषक, कथक, प्लवक, लासक, आख्यायक, लंख, मंख, तूणइल्ल, तुंबवीणिक, तालाचर आदि अनेक जनों से वह सेवित थी । आराम, उद्यान, कूएं, तालाब, बावड़ी, जल के बाँध-इनसे युक्त थी, नंदनवन-सी लगती थी । वह ऊंची, विस्तीर्ण और गहरी खाई से युक्त थी, चक्र, गदा, भुसुंडि, गोफिया, अवरोध-प्राकार, महाशिला, जिसके गिराये जाने पर सैकड़ों व्यक्ति दब-कुचल कर मर जाएं और द्वार के छिद्र रहित कपाटयुगल के कारण जहाँ प्रवेश कर पाना दुष्कर था ।

धनुष जैसे टेढ़े परकोटे से वह घिरी हुई थी । उस परकोटे पर गोल आकार के बने हुए कपिशीर्षकों-से वह सुशोभित थी । उसके राजमार्ग, अट्टालक, गुमटियों, चरिका, वारियों, गोपुरों, तोरणों से सुशोभित और सुविभक्त थे। उसकी अर्गला और इन्द्रकील-निपुण शिल्पियों द्वारा निर्मित थीं । हाट-मार्ग, व्यापार-क्षेत्र, बाजार आदि के कारण तथा बहुत से शिल्पियों, कारीगरों के आवासित होने के कारण वह सुख-सुविधा पूर्ण थी । तिकोने स्थानों, तिराहों, चौराहों, चत्वरों, ऐसे स्थानों, बर्तन आदि की दुकानों तथा अनेक प्रकार की वस्तुओं से परिमंडित और रमणीय थी । राजा की सवारी नीकलते रहने के कारण उसके राजमार्गों पर भीड़ लगी रहती थी । वहाँ अनेक उत्तम घोड़े, मदोन्मत्त हाथी, रथसमूह, शिबिका, स्यन्दमानिका, यान, तथा युग्य-इनका जमघट लगा रहता था । वहाँ खिले हुए कमलों से शोभित जलाशय थे । सफेदी किए हुए उत्तम भवनों से वह सुशोभित, अत्यधिक सुन्दरता के कारण निर्निमेष नेत्रों से प्रेक्षणीय, चित्त को प्रसन्न करने वाली, दर्शनीय, अभिरूप तथा प्रतिरूप थी ।

सूत्र - २

उस चम्पा नगरी के बाहर ईशान कोण में पूर्णभद्र नामक चैत्य था । वह चिरकाल से चला आ रहा था । पूर्व पुरुष उसकी प्राचीनता की चर्चा करते रहते थे । वह सुप्रसिद्ध था । वह चढ़ावा, भेंट आदि के रूप में प्राप्त सम्पत्ति से युक्त था । वह कीर्तित था, न्यायशील था । वह छत्र, ध्वजा, घण्टा तथा पताका युक्त था । छोटी और बड़ी झण्डियों से सजा था । सफाई के लिए वहाँ रोममय पिच्छियाँ रखी थीं । वेदिकाएं बनी हुई थीं । वहाँ के भूमि गोबर आदि से लिपी थी । उसकी दीवारें खड़िया, कलई आदि से पुती थीं । उसकी दीवारों पर गोरोचन तथा आर्द्र लाल चन्दन के, पाँचों अंगुलियों और हथेली सहित, हाथ की छापें लगीं थीं । वहाँ चन्दन-कलश रखे थे । उसका प्रत्येक द्वार-भाग चन्दन-कलशों और तोरणों से सजा था । जमीन से ऊपर तक के भाग को छूती हुई बड़ी-बड़ी, गोल तथा लम्बी अनेक पुष्पमालाएं लटकती थीं । पाँचों रंगों के फूलों के ढेर के ढेर वहाँ चढ़ाये हुए थे, जिनसे वह बड़ा सुन्दर प्रतीत होता था । काले अगर, उत्तम कुन्दरुक, लोबान तथा धूप की गमगमाती महक से वहाँ का वातावरण बड़ा मनोज्ञ था, उत्कृष्ट सौरभमय था । सुगन्धित धूएं की प्रचुरता से वहाँ गोल-गोल धूममय छल्ले से बन रहे थे ।

वह चैत्य नट, नर्तक, जल्ल, मल्ल, मौष्टिक, विदूषक, प्लवक, कथक, लासक, लंख, मंख, तूणइल्ल,

तुम्ब-वीणिक, भोजक तथा भाट आदि यशोगायक से युक्त था । अनेकानेक नागरिकी तथा जनपदवासियों में उसकी कीर्ति फैली थी । बहुत से दानशील, उदार पुरुषों के लिए वह आह्वनीय, प्राह्वणीय, अर्चनीय, वन्दनीय, नमस्क-रणीय, पूजनीय, सत्करणीय, सम्माननीय, कल्याणमय, मंगलमय, दिव्य, पर्य्युपासनीय था । वह दिव्य, सत्य एवं सत्योपाय था । वह अतिशय व अतीन्द्रिय प्रभावयुक्त था, हजारों प्रकार की पूजा उसे प्राप्त थी । बहुत से लोग वहाँ आते और उस पूर्णभद्र चैत्य की अर्चना करते ।

सूत्र - ३

वह पूर्णभद्र चैत्य चारों ओर से एक विशाल वन-खण्ड से घिरा हुआ था । सघनता के कारण वह वन-खण्ड काला, काली आभा वाला, नीला, नीली आभा वाला तथा हरा, हरी आभा वाला था । लताओं, पौधों व वृक्षों की प्रचुरता के कारण वह स्पर्श में शीतल, शीतल आभामय, स्निग्ध, स्निग्ध आभामय, सुन्दर वर्ण आदि उत्कृष्ट गुणयुक्त तथा तीव्र आभामय था । यों वह वन-खण्ड कालापन, काली छाया, नीलापन, नीली छाया, हरापन, हरी छाया, शीतलता, शीतल छाया, स्निग्धता, स्निग्ध छाया, तीव्रता तथा तीव्र छाया लिये हुए था । वृक्षों की शाखाओं के परस्पर गुँथ जाने के कारण वह गहरी, सघन छाया से युक्त था । उसका दृश्य ऐसा रमणीय था, मानो बड़े बड़े बादलों की घटाएं घिरी हों ।

उस वन-खण्ड के वृक्ष उत्तम-मूल, कन्द, स्कन्ध, छाल, शाखा, प्रवाल, पत्र, पुष्प, फल तथा बीज से सम्पन्न थे । वे क्रमशः आनुपातिक रूप में सुन्दर तथा गोलाकार विकसित थे । उनके एक-एक–तना तथा अनेक शाखाएं थीं । उनके मध्य भाग अनेक शाखाओं और प्रशाखाओं का विस्तार लिये हुए थे । उनके सघन, विस्तृत तथा सुघड़ तने अनेक मनुष्यों द्वारा फैलाई हुई भुजाओं से भी गृहीत नहीं किये जा सकते थे । उनके पत्ते छेदरहित, अविरल, अधोमुख, तथा उपद्रव-रहित थे । उनके पुराने, पीले पत्ते झड़ गये थे । नये, हरे, चमकीले पत्तों की सघनता से वहाँ अंधेरा तथा गम्भीरता दिखाई देती थी । नवीन, परिपुष्ट पत्तों, कोमल उज्ज्वल तथा हिलते हुए किसलयों, प्रवालों से उनके उच्च शिखर सुशोभित थे । उनमें कईं वृक्ष ऐसे थे, जो सब ऋतुओं में फूलों, मंजरियों, पत्तों, फूलों के गुच्छों, गुल्मों तथा पत्तों के गुच्छों से युक्त रहते थे । कईं ऐसे थे, जो सदा समश्रेणिक रूप में स्थित थे । कईं जो सदा युगल रूप में कईं पुष्प, फल आदि के भार से नित्य विनमित, प्रणमित नमे हुए थे ।

यों विविध प्रकार की अपनी-अपनी विशेषताएं लिये हुए वे वृक्ष अपनी सुन्दर लुम्बियों तथा मंजरियों के रूप में मानो शिरोभूषण धारण किये रहते थे । तोते, मोर, मैना, कोयल, कोभगक, भिंगारक, कोण्डलक, चकोर, नन्दिमुख, तीतर, बटेर, बतख, चक्रवाक, कलहंस, सारस प्रभृति पक्षियों द्वारा की जाती आवाज के उन्नत एवं मधुर स्वरालाप से वे वृक्ष गुंजित थे, सुरम्य प्रतीत होते थे । वहाँ स्थित मदमाते भ्रमरों तथा भ्रमरियों या मधुमक्खियों के समूह एवं मकरंद के लोभ से अन्यान्य स्थानों से आये हुए विविध जाति के भँवर मस्ती से गुनगुना रहे थे, जिससे वह स्थान गुंजायमान हो रहा था । वे वृक्ष भीतर से फूलों और फलों से आपूर्ण थे तथा बाहर से पत्तों से ढके थे । वे पत्तों और फूलों से सर्वथा लदे थे । उनके फल स्वादिष्ट, नीरोग तथा निष्कण्टक थे । वे तरह-तरह के फूलों तथा गुच्छों, लता-कुंजों तथा मण्डपों द्वारा रमणीय प्रतीत होते थे, शोभित होते थे । वहाँ भिन्न-भिन्न प्रकार की सुन्दर ध्वजाएं फहराती थीं । चौकोर, गोल तथा लम्बी बावड़ियों में जाली-झरोखेदार सुन्दर भवन बने थे । दूर-दूर तक जाने वाली सुगन्ध के संचित परमाणुओं के कारण वे वृक्ष अपनी सुन्दर महक से मन को हर लेते थे, अत्यन्त तृप्ति-कारक विपुल सुगन्ध छोड़ते थे । वहाँ नानाविध, अनेकानेक पुष्पगुच्छ, लताकुंज, मण्डप, विश्राम-स्थान, सुन्दर मार्ग थे, झण्डे लगे थे । वे वृक्ष अनेक रथों, वाहनों, डोलियों तथा पालखियों के ठहराने के लिए उपयुक्त विस्तीर्ण थे। इस प्रकार के वृक्ष रमणीय, मनोरम, दर्शनीय, अभिरूप तथा प्रतिरूप थे ।

सूत्र - ४

उस वन-खण्ड के ठीक बीच के भाग में एक विशाल एवं सुन्दर अशोक वृक्ष था । उसकी जड़ें डाभ तथा दूसरे प्रकार के तृणों से विशुद्ध थी । वह वृक्ष उत्तम मूल यावत् रमणीय, दर्शनीय, अभिरूप तथा प्रतिरूप था । वह उत्तम अशोक वृक्ष तिलक, लकुच, क्षत्रोप, शिरीष, सप्तपर्ण, दधिपर्ण, लोघ्र, धव, चन्दन, अर्जुन, नीप, कटुज, कदम्ब, सव्य, पनस, दाड़िम, शाल, ताल, तमाल, प्रियक, प्रियंगु, पुरोपग, राजवृक्ष, नन्दिवृक्ष–इन अनेक अन्य

पादपों से सब ओर से घिरा हुआ था ।

उन तिलक, लकुच, यावत् नन्दिवृक्ष–इन सभी पादपों की जड़ें डाभ तथा दूसरे प्रकार के तृणों से विशुद्ध थीं । उनके मूल, कन्द आदि दशों अंग उत्तम कोटि के थे । यों वे वृक्ष रमणीय, मनोरम, दर्शनीय, अभिरूप तथा प्रतिरूप थे । वे तिलक, नन्दिवृक्ष आदि पादप अन्य बहुत सी पद्मलताओं, नागलताओं, अशोकलताओं, चम्पक-लताओं, सहकारलताओं, पीलुकलताओं, वासन्तीलताओं तथा अतिमुक्तकलताओं से सब ओर से घिरे हुए थे । वे लताएं सब ऋतुओं में फूलती थीं यावत् वे रमणीय, मनोरम, दर्शनीय, अभिरूप तथा प्रतिरूप थीं ।

सूत्र - ५

उस अशोक वृक्ष के नीचे, उसके तने के कुछ पास एक बड़ा पृथिवी-शिलापट्टक था । उसकी लम्बाई, चौड़ाई तथा ऊंचाई समुचित प्रमाण में थी । वह काला था । वह अंजन, बादल, कृपाण, नीले कमल, बलराम के वस्त्र, आकाश, केश, काजल की कोठरी, खंजन पक्षी, भैंस के सींग, रिष्टक रत्न, जामुन के फल, बीयक, सन के फूल के डंठल, नील कमल के पत्तों की राशि तथा अलसी के फूल के सदृश प्रभा लिये हुए था । नील मणि, कसौटी, कमर पर बाँधने के चमड़े के पट्टे तथा आँखों की कनीनिका–इनके पुंज जैसा उसका वर्ण था । अत्यन्त स्निग्ध था । उसके आठ कोने थे । दर्पण के तल समान सुरम्य था । भेड़िये, बैल, घोड़े, मनुष्य, मगर, पक्षी, साँप, किन्नर, रुरु, अष्टापद, चमर, हाथी, वनलता और पद्मलता के चित्र उस पर बने हुए थे । उसका स्पर्श मृगछाला, कपास, बूर, मक्खन तथा आक की रूई के समान कोमल था । वह आकार में सिंहासन जैसा था । इस प्रकार वह शिलापट्टक मनोरम, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप था ।

सूत्र - ६

चम्पा नगरी में कूणिक नामक राजा था, जो वहाँ निवास करता था । वह महाहिमवान् पर्वत के समान महत्ता तथा मलय, मेरु एवं महेन्द्र के सदृश प्रधानता या विशिष्टता लिये हुए था । वह अत्यन्त विशुद्ध चिरकालीन था । उसके अंग पूर्णतः राजोचित लक्षणों से सुशोभित थे । वह बहुत लोगों द्वारा अति सम्मानित और पूजित था, सर्वगुणसमृद्ध, क्षत्रिय, मुदिक, मूर्द्धाभिषेक, उत्तम माता-पिता से उत्पन्न, करुणाशील, मर्यादाओं की स्थापना करने वाला तथा पालन करने वाला, क्षेमंकर, क्षेमंधर, मनुष्यों में इन्द्र के समान, अपने राष्ट्र के लिए पितृतुल्य, प्रति-पालक, हितकारक, कल्याणकारक, पथदर्शक, उपस्थापक, नरप्रवर, पुरुषवर, पराक्रम में सिंहतुल्य, रौद्रता में बाध सदृश, सामर्थ्य में सर्पतुल्य, पुरुषों में पुण्डरीक, और पुरुषों में गन्धहस्ती के समान था ।

वह समृद्ध, दृप्त तथा वित्त या वृत्त था । उसके यहाँ बड़े-बड़े विशाल भवन, सोने-बैठने के आसन तथा रथ, घोड़े आदि सवारियाँ, वाहन बड़ी मात्रा में थे । उसके पास विपुल सम्पत्ति, सोना तथा चाँदी थी । अर्थ लाभ के उपायों का प्रयोक्ता था । उसके यहाँ भोजन कर लिये जाने के बाद बहुत खाद्य-सामग्री बच जाती थी । उसके यहाँ अनेक दासियाँ, दास, गायें, भैंसे तथा भेड़ें थीं । उसके यहाँ यन्त्र, कोष, कोष्ठागार तथा शस्त्रागार प्रतिपूर्ण था । प्रभूत सेना थी। अपने राज्य के सीमावर्ती राजाओं या पड़ोसी राजाओं को शक्तिहीन बना दिया था । अपने सगोत्र प्रतिस्पर्द्धियों को विनष्ट कर दिया था । उनका धन छीन लिया था, उनका मान भंग कर दिया था तथा उन्हें देश से निर्वासित कर दिया था। उसी प्रकार अपने शत्रुओं को विनष्ट कर दिया था, उनकी सम्पत्ति छीन ली थी, उनका मानभंग कर दिया था और उन्हें देश से निर्वासित कर दिया था । अपने प्रभावातिशय से उसने उन्हें जीत लिया था, पराजित कर दिया था । इस प्रकार वह राजा निरुपद्रव, क्षेममय, कल्याणमय, सुभिक्षयुक्त एवं शत्रुकृत विघ्नरहित राज्य का शासन करता था ।

सूत्र - ७

राजा कूणिक की रानी का नाम धारिणी था । उसके हाथ-पैर सुकोमल थे । शरीर की पाँचों इन्द्रियाँ अहीन -प्रतिपूर्ण, सम्पूर्ण थीं । उत्तम लक्षण, व्यंजन तथा गुणयुक्त थी । दैहिक फैलाव, वजन, ऊंचाई आदि की दृष्टि से वह परिपूर्ण, श्रेष्ठ तथा सर्वांगसुन्दरी थी । उसका स्वरूप चन्द्र के समान सौम्य तथा दर्शन कमनीय था । परम रूपवती थी । उसकी देह का मध्य भाग मुट्ठी द्वारा गृहीत की जा सके, इतना सा था । पेट पर पड़ने वाली उत्तम तीन रेखाओं से युक्त थी । कपोलों की रेखाएं कुण्डलों से उद्दीप्त थीं । मुख शरत्पूर्णिमा के चन्द्र के सदृश निर्मल, परिपूर्ण तथा सौम्य था । सुन्दर वेशभूषा ऐसी थी, मानों शृंगार-रस का आवास-स्थान हो । उसकी चाल, हँसी,

बोली, कृति एवं दैहिष चेष्टाएं संगत थीं । लालित्यपूर्ण आलाप-संलाप में वह चतुर थी । समुचित लोक-व्यवहार में कुशल थी । मनोरम, दर्शनीय, अभिरूप तथा प्रतिरूप थी ।

सूत्र - ८

राजा कूणिक के यहाँ पर्याप्त वेतन पर भगवान महावीर के कार्यकलाप को सूचित करने वाला एक वार्ता-निवेदक पुरुष नियुक्त था, जो भगवान के प्रतिदिन के विहारक्रम आदि प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में राजा को निवेदन करता था । उसने अन्य अनेक व्यक्तियों को भोजन तथा वेतन पर नियुक्त कर रखा था, जो भगवान की प्रतिदिन की प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में उसे सूचना करते रहते थे ।

सूत्र - ९

एक समय की बात है, भंभसार का पुत्र कूणिक अनेक गणनायक, दण्डनायक, राजा, ईश्वर, तलवर, माडंबिक, कौटुम्बिक, मन्त्री, महामन्त्री, गणक, द्वारपाल, अमात्य, सेवक, पीठमर्दक, नागरिक, व्यापारी, सेठ, सेनापति, सार्थवाह, दूत, सन्धिपाल, इन विशिष्ट जनों से संपरिवृत्त बहिर्वर्ती राजसभा भवन में अवस्थित था ।

सूत्र - १०

उस समय श्रमण भगवान महावीर आदिकर, तीर्थंकर, स्वयं-संबुद्ध, पुरुषोत्तम, पुरुषसिंह, पुरुषवर-पुंडरीक, पुरुषवर-गन्धहस्ती, अभयप्रदायक, चक्षु-प्रदायक, मार्ग-प्रदायक, शरणप्रद, जीवनप्रद, संसार-सागर में भटकते जनों के लिए द्वीप के समान आश्रयस्थान, गति एवं आधारभूत, चार अन्त युक्त पृथ्वी के अधिपति के समान चक्रवर्ती, प्रतिघात, व्यावृत्तछद्मा, जिन, ज्ञायक, तीर्ण, तारक, मुक्त, मोचक, बुद्ध, बोधक, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, शिव, अचल, निरुपद्रव, अन्तरहित, क्षयरहित, बाधारहित, अपुनरावर्तन, अर्हत्, रागादिविजेता, जिन, केवली, सात हाथ की दैहिक ऊंचाई से युक्त, समचौरस संस्थान-संस्थित, वज्र-ऋषभ-नाराच-संहनन, देह के अन्तर्वर्ती पवन के उचित वेग-गतिशीलता से युक्त, कंक पक्षी की तरह निर्दोष गुदाशय युक्त, कबूतर की तरह पाचन शक्ति युक्त, उनका अपान-स्थान उसी तरह निर्लेप था, जैसे पक्षी का, पीठ और पेट के नीचे के दोनों पार्श्व तथा जंघाएं सुपरिणत-सुन्दर-सुगठित थीं, उनका मुख पद्म तथा उत्पल जैसे सुरभिमय निःश्वास से युक्त था, उत्तम त्वचा युक्त, नीरोग, उत्तम, प्रशस्त, अत्यन्त श्वेत मांस युक्त, जल्ल, मल्ल, मैल, धब्बे, स्वेद तथा रज-दोष वर्जित शरीर युक्त, अत एव निरुपलेप दीप्ति से उद्योतित प्रत्येक अंगयुक्त, अत्यधिक सघन, सुबद्ध स्नायुबंध सहित, उत्तम लक्षणमय पर्वत के शिखर के समान उन्नत उनका मस्तक था ।

बारीक रेशों से भरे सेमल के फल फटने से नीकलते हुए रेशों जैसे कोमल विशद, प्रशस्त, सूक्ष्म, श्लक्ष्ण, सुरभित, सुन्दर, भुजमोचक, नीलम, भींग, नील, कज्जल, प्रहृष्ट, भ्रमरवृन्द जैसे चमकीले काले, घने, घुँघराले, छल्लेदार केश उनके मस्तक पर थे, जिस त्वचा पर उनके बाल उगे हुए थे, वह अनार के फूल तथा सोने के समान दीप्तिमय, लाल, निर्मल और चिकनी थी, उनका उत्तमांग सघन, और छत्राकार था, उनका ललाट निर्व्रण-फोड़े-फुन्सी आदि के घाव से रहित, समतल तथा सुन्दर एवं शुद्ध अर्द्ध चन्द्र के सदृश भव्य था, मुख पूर्ण चन्द्र के समान सौम्य था, कान मुख के समान सुन्दर रूप में संयुक्त और प्रमाणोपेत थे, बड़े सुहावने लगते थे, उनके कपोल मांसलल और परिपुष्ट थे, उनकी भौंहें कुछ खींचे हुए धनुष के समान सुन्दर काले बादल की रेखा के समान कृश, काली एवं स्निग्ध थीं, उनके नयन खिले हुए पुंडरीक समान थे, उनकी आँखें पद्म की तरह विकसित, धवल तथा पत्रल थीं, नासिका गरुड़ की तरह सीधी और उन्नत थी, बिम्ब फल के सदृश उनके होठ थे, उनके दाँतों की श्रेणी निष्कलंक चन्द्रमा के टुकड़े, निर्मल से भी निर्मल शंख, गाय के दूध, फेन, कुंद के फूल, जलकण और कमल-नाल के समान सफेद थी, दाँत अखंड, परिपूर्ण, अस्फुटित, टूट फूट रहित, अविरल, सुस्निग्ध, आभामय, सुजात थे । अनेक दाँत एक दन्तश्रेणी की तरह प्रतीत होते थे, जिह्वा और तालु अग्नि में तपाये हुए और जल से धोये हुए स्वर्ण के समान लाल थे, उनकी दाढ़ी-मूँछ अवस्थित, सुविभक्त बहुत हलकी-सी तथा अद्‌भुत सुन्दरता लिए हुए थी, ठुड्डी मांसल, सुगठित, प्रशस्त तथा चिते की तरह विपुल थी, ग्रीवा चार अंगुल प्रमाण तथा उत्तम शंख के समान त्रिवलि-युक्त एवं उन्नत थी ।

उनके कन्धे प्रबल भैंसे, सूअर, सिंह, चिते, सांड के तथा उत्तम हाथी के कन्धों जैसे परिपूर्ण एवं विस्तीर्ण

थे, उनकी भुजाएं युग-गाड़ी के यूप की तरह गोल और लम्बी, सुदृढ़, देखने में आनन्दप्रद, सुपुष्ट कलाइयों से युक्त, सुश्लिष्ट, विशिष्ट, घन, स्थिर, स्नायुओं से यथावत् रूप में सुबद्ध तथा नगर की अर्गला समान गोलाई लिए हुए थीं, ईच्छित वस्तु प्राप्त करने के लिए नागराज के फैले हुए विशाल शरीर की तरह उनके दीर्घ बाहु थे, उनके हाथ के भाग उन्नत, कोमल, मांसल तथा सुगठित थे, शुभ लक्षणों से युक्त थे, अंगुलियाँ मिलाने पर उनमें छिद्र दिखाई नहीं देते थे, उनके तल ललाई लिए हुए, पतली, उजली, रुचिर, रुचिकर, स्निग्ध सुकोमल थीं, उनकी हथेली में चन्द्र, सूर्य, शंख, चक्र, दक्षिणावर्त्त स्वस्तिक की शुभ रेखाएं थीं, उनका वक्षःस्थल, स्वर्ण-शिला के तल के समान उज्ज्वल, प्रशस्त समतल, उपचित, विस्तीर्ण, पृथुल था, उस पर श्रीवत्स–स्वस्तिक का चिह्न था, देह की मांसलता या परिपुष्टता के कारण रीढ़ की हड्डी नहीं दिखाई देती थी, उनका शरीर स्वर्ण के समान कान्तिमान, निर्मल, सुन्दर, निरुपहत था, उसमें उत्तम पुरुष के १००८ लक्षण पूर्णतया विद्यमान थे, उनकी देह के पार्श्व भाग नीचे की ओर क्रमशः संकड़े, देह के प्रमाण के अनुरूप, सुन्दर, सुनिष्पन्न, अत्यन्त समुचित परिमाण में मांसलता लिए हुए मनोहर थे, उनके वक्ष और उदर पर सीधे, समान, संहित, उत्कृष्ट कोटि के, सूक्ष्म, काले, चिकने उपादेय, लावण्यमय, रमणीय बालों की पंक्ति थी, उनके कुक्षिप्रदेश मत्स्य और पक्षी के समान सुजात–सुन्दर रूप में अवस्थित तथा पीन थे, उनका उदर मत्स्य जैसा था, उनके आन्त्र समूह निर्मल था, उनकी नाभि कमल की तरह विकट, गंगा के भंवर की तरह गोल, दाहिनी और चक्कर काटती हुई तरंगों की तरह घुमावदार, सुन्दर, चमकते हुए सूर्य की किरणों से विकसित होते कमल के समान खिली हुई थी तथा उनकी देह का मध्यभाग त्रिकाष्ठिका, मूसलव दर्पण के हत्थे के मध्य-भाग के समान, तलवार की मूठ के समान तथा उत्तम वज्र के समान गोल और पतला था, प्रमुदित, स्वस्थ, उत्तम घोड़े तथा उत्तम सिंह की कमर के समान उनकी कमर गोल घेराव लिए थी ।

उत्तम घोड़े के सुनिष्पन्न गुप्तांग की तरह उनका गुह्य भाग था, उत्तम जाति के अश्व की तरह उनका शरीर 'मलमूत्र' विसर्जन की अपेक्षा से निर्लेप था, श्रेष्ठ हाथी के तुल्य पराक्रम और गम्भीरता लिए उनकी चाल थी, हाथी की सूँड की तरह उनकी जंघाएं सुगठित थी, उनके घुटने डिब्बे के ढक्कन की तरह निगूढ़ थे, उनकी पिण्डलियाँ हरिणी की पिण्डलियों, कुरुविन्द घास तथा कते हुए सूत की गेंढी की तरह क्रमशः उतार सहित गोल थीं, उनके टखने सुन्दर, सुगठित और निगूढ थे, उनके चरण, सुप्रतिष्ठित तथा कछुए की तरह उठे हुए होने से मनोज्ञ प्रतीत होते थे, उनके पैरों की अंगुलियाँ क्रमशः आनुपातिक रूप में छोटी-बड़ी एवं सुसंहत थीं, पैरों के नख उन्नत, पतले, तांबे की तरह लाल, स्निग्ध थे, उनकी पगथलियाँ लाल कमल के पत्ते के समान मृदुल, सुकुमार तथा कोमल थीं, उनके शरीर में उत्तम पुरुषों के १००८ लक्षण प्रकट थे, उनके चरण पर्वत, नगर, मगर, सागर तथा चक्र रूप उत्तम चिह्नों और स्वस्तिक आदि मंगल-चिह्नों से अंकित थे, उनका रूप विशिष्ट था, उनका तेज निर्धूम अग्नि की ज्वाला, विस्तीर्ण विद्युत तथा अभिनव सूर्य की किरणों के समान था, वे प्राणातिपात आदि आस्रव-रहित, ममता-रहित थे, अकिंचन थे, भव-प्रवाह को उच्छिन्न कर चूके थे, निरुपलेप थे, प्रेम, राग, द्वेष और मोह का नाश कर चूके थे, निर्ग्रन्थ-प्रवचन के उपदेष्टा, धर्मशासन के नायक, प्रतिष्ठापक तथा श्रमम-पति थे, श्रमण वृन्द से घिरे हुए थे, जिनेश्वरों के चौंतीस बुद्ध-अतिशयों से तथा पैंतीस सत्य-वचनातिशयों से युक्त थे, आकाशगत चक्र, छत्र, आकाश-गत चंवर, आकाश के समान स्वच्छ स्फटिक से बने पाद-पीठ सहित सिंहासन, धर्मव्यज–ये उनके आगे चल रहे थे, चौदह हजार साधु तथा छत्तीस हजार साध्वियों से संपरिवृत्त थे, आगे से आगे चलते हुए, एक गाँव से दूसरे गाँव होते हुए सुखपूर्वक विहार करते हुए चम्पा के बाहरी उपनगर में पहुँचे, जहाँ से उन्हें चम्पा में पूर्णभद्र चैत्य में पधारना था ।

सूत्र - ११

प्रवृत्ति-निवेदन को जब यह बात मालूम हुई, वह हर्षित एवं परितुष्ट हुआ । उसने अपने मन में आनन्द तथा प्रीति का अनुभव किया । सौम्य मनोभाव व हर्षातिरेक से उसका हृदय खिल उठा । उसने स्नान किया, नित्य-नैमित्तिक कृत्य किये, कौतुक, तिलक, प्रायश्चित्त, मंगल-विधान किया, शुद्ध, प्रवेश्य–उत्तम वस्त्र भली भाँति पहने, थोड़े से पर बहुमूल्य आभूषणों से शरीर को अलंकृत किया । यों वह अपने घर से नीकलकर वह चम्पानगरी के बीच जहाँ राजा कूणिक का महल था, जहाँ बहिर्वर्ती राजसभा-भवन था, जहाँ भंभसार का पुत्र राजा कूणिक था,

वहाँ आया । उसने हाथ जोड़त हुए, अंजलि बाँधे ''आपकी जय हो, विजय हो'' इन शब्दों में वर्धापित किया । तत्पश्चात् बोला–देवानुप्रिय ! जिनके दर्शन की आप कांक्षा, स्पृहा, प्रार्थना और अभिलाषा करते हैं–जिनके नाम तथा गोत्र के श्रवणमात्र से हर्षित एवं परितुष्ट होते हैं, हर्षातिरेक से हृदय खिल उठता है, वे श्रमण भगवान महावीर अनुक्रम से विहार करते हुए, एक गाँव से दूसरे गाँव होते हुए चम्पा नगरी के उपनगर में पधारे हैं। अब पूर्णभद्र चैत्य में पधारेंगे । देवानुप्रिय ! आपके प्रीत्यर्थ निवेदित कर रहा हूँ । यह आपके लिए प्रियकर हो

सूत्र - १२

भंभसार का पुत्र राजा कूणिक वार्तानिवेदक से यह सूनकर, उसे हृदयंगम कर हर्षित एवं परितुष्ट हुआ । उत्तम कमल के समान उसका मुख तथा नेत्र खिल उठे । हर्षातिरेक जनित संस्फूर्तिवश राजा के हाथों के उत्तम कड़े, बाहुरक्षिका, केयूर, मुकूट, कुण्डल तथा वक्षःस्थल पर शोभित हार सहसा कम्पित हो उठे–राजा के गले में लम्बी माला लटक रही थी, आभूषण झूल रहे थे । राजा आदरपूर्वक शीघ्र सिंहासन से उठा । पादपीठ पर पैर रखकर नीचे ऊतरा । पादुकाएं उतारीं । फिर खड्ग, छत्र, मुकुट, वाहन, चंवर–इन पाँच राजनिह्नों को अलग किया। जल से आमचन किया, स्वच्छ, परम शुचिभूत, अति स्वच्छ व शुद्ध हुआ । कमल की फली की तरह हाथों को संपुटित किया । जिस ओर तीर्थंकर भगवान महावीर बिराजित थे, उस ओर सात, आठ कदम सामने गया । वैसा कर अपने बायें घुटने को आकुंचित किया–सकिड़ा, दाहिने घुटने को भूमि पर टिकाया, तीन बार अपना मस्तक जमीन से लगाया । फिर वह कुछ ऊपर उठा, कंकण तथा बाहुरक्षिका से सुस्थिर भुजाओं को उठाया, हाथ जोड़े, अंजलि की ओर बोला ।

अर्हत्, भगवान्, आदिकर, तीर्थंकर, धर्मतीर्थ, स्वयंसंबुद्ध, पुरुषोत्तम, पुरुषसिंह, पुरुषवरपुण्डरीक, पुरुषवर-गन्धहस्ती, लोकोत्तम, लोकनाथ, लोकहितकर, लोकप्रदीप, लोकप्रतीप, लोकप्रद्योतकर, अभयदायक, चक्षुदायक, मार्गदायक, शरणदायक, जीवनदायक, बोधिदायक, धर्मदायक, धर्मदेशक, धर्मनायक, धर्मसारथि, धर्मवरचातुरन्त–चक्रवर्ती, दीप, अथवा द्वीप, त्राण, शरण, गति एवं प्रतिष्ठास्वरूप, प्रतिघात, बाधा या आवरण-रहित उत्तम ज्ञान, दर्शन के धारक, व्यावृत्तछद्मा जिन, ज्ञाता, तीर्ण, तारक, बुद्ध, बोधक, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, शिव, अचल, निरुपद्रव, अन्तरहित, क्षयरहित, बाधारहित, अपुनरावर्तन, ऐसी सिद्धि-गति–सिद्धों को नमस्कार हो ।

आदिकर, तीर्थंकर, सिद्धावस्था पाने के इच्छुक, मेरे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक श्रमण भगवान महावीर को मेरा नमस्कार हो । यहाँ स्थित मैं, वहाँ स्थित भगवान को वन्दन करता हूँ । वहाँ स्थित भगवान यहाँ स्थित मुझको देखते हैं । इस प्रकार राजा कूणिक ने भगवान को वन्दना की, नमस्कार किया । पूर्व की ओर मुँह किये अपने उत्तम सिंहासन पर बैठा । एक लाख आठ हजार रजत मुद्राएं वार्तानिवेदक को प्रीतिदान रूप से दी । उत्तम वस्त्र आदि द्वारा उसका सत्कार किया, आदरपूर्ण वचनों से सम्मान किया । यों सत्कार तथा सम्मान कर उसने कहा–देवानु-प्रिय ! जब श्रमण भगवान महावीर यहाँ पधारे, यहाँ चम्पानगरी के बाहर पूर्णभद्र चैत्य में यथाप्रतिरूप आवास-स्थान ग्रहण कर संयम एवं तप से आत्मा को भावित करते हुए विराजित हों, मुझे यह समझाकर निवेदित करना । यों कहकर राजा ने वार्तानिवेदक को वहाँ से बिदा किया ।

सूत्र - १३

तत्पश्चात् अगले दिन रात बीत जाने पर, प्रभात हो जाने पर, नीले तथा अन्य कमलों के सुहावने रूप में खिल जाने पर, उज्ज्वल प्रभायुक्त एवं लाल अशोक, पलाश, तोते की चोंच, घुंघची के आधे भाग के सदृश लालिमा लिए हुए, कमलवन को विकसित करने वाले, सहस्रकिरणयुक्त, दिन के प्रादुर्भावक सूर्य के उदित होने पर, अपने तेज से उद्दीप्त होने पर श्रमण भगवान महावीर, जहाँ चम्पा नगरी थी, जहाँ पूर्णभद्र चैत्य था, वहाँ पधारे । यथा-प्रतिरूप आवास ग्रहण कर संयम एवं तप से आत्मा को भावित करते हुए बिराजे ।

सूत्र - १४

तब श्रमण भगवान महावीर के अन्तेवासी बहुत से श्रमण संयम तथा तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरते थे । उनमें अनेक ऐसे थे, जो उग्र, भोग, राजन्य, ज्ञात, कुरुवंशीय, क्षत्रि, सुभट, योद्धा, सेनापति, प्रशास्ता, सेठ, इभ्य, इन इन वर्गों में से दीक्षित हुए थे । और भी बहुत से उत्तम जाति, उत्तम कुल, सुन्दररूप, विनय, विज्ञान,

वर्ण, लावण्य, विक्रम, सौभाग्य तथा कान्ति से सुशोभित, विपुल धन धान्य के संग्रह और पारिवारिक सुख-समृद्धि से युक्त, राजा से प्राप्त अतिशय वैभव सुख आदि से युक्त ईच्छित भोगप्राप्त तथा सुख से लालित-पालित थे, जिन्होंने सांसारिक भोगों के सुख को किंपाक फल के सदृश असार, जीवन को जल के बुलबुले तथा कुश के सिरे पर स्थित जल की बूँद की तरह चंचल जानकर सांसारिक अस्थिर पदार्थों को वस्त्र पर लगी हुई रज के समान झाड़ कर, हिरण्य यावत् सुवर्ण परित्याग कर, श्रमण जीवन में दीक्षित हुए । कइयों को दीक्षित हुए आधा महीना, कइयों को एक महीना, दो महीने यावत् ग्यारह महीने हुए थे, कइयों को एक वर्ष, कइयों को दो वर्ष, कइयों को तीन वर्ष तथा कइयों को अनेक वर्ष हुए थे ।

सूत्र - १५

उस समय श्रमण भगवान महावीर के अन्तेवासी बहुत से निर्ग्रन्थ संयम तथा तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरण करते थे । उनमें कईं मतिज्ञानी यावत् केवलज्ञानी थे । कईं मनोबली, वचनबली, तथा कायबली थे । कईं मन से, कईं वचन से, कईं शरीर द्वारा अपकार व उपकार करने में समर्थ थे । कईं खेलौषधिप्राप्त, कईं जल्लौषधिप्राप्त थे । कईं ऐसे थे जिनके बाल, नाखून, रोम, मल आदि सभी औषधिरूप थे–कईं कोष्ठबुद्धि, कईं बीजबुद्धि, कईं पटबुद्धि, कईं पदानुसारी, बुद्धि–लिये हुए थे । कईं संभिन्नश्रोता, कईं क्षीरास्रव, कईं मध्यास्रव, कईं सर्पि-आस्रव–थे, कईं अक्षीणमहानसिक लब्धि वाले थे ।

कईं ऋजुमति तथा कईं विपुलमति मनःपर्यवज्ञानके धारक थे । कईं विकुर्वणा, कईं चारण, कईं विद्याधर-प्रज्ञप्ति, कईं आकाशातिपाती–समर्थ थे । कईं कनकावली, कईं एकावली, कईं लघु-सिंह-निष्क्रीड़ित, तथा कईं महासिंहनिष्क्रीड़ित तप करने में संलग्न थे । कईं भद्रप्रतिमा, महाभद्रप्रतिमा, सर्वतोभद्रप्रतिमा तथा आयंबिल वर्द्धमान तप करते थे । कईं एकमासिक भिक्षुप्रतिमा, यावत् साप्तमासिक भिक्षुप्रतिमा ग्रहण किये हुए थे । कईं प्रथम सप्तरात्रिन्दिवा यावत् कईं तृतीय सप्तरात्रिन्दिवा भिक्षुप्रतिमा के धारक थे । कईं एक रातदिन की भिक्षु-प्रतिमा ग्रहण किये हुए थे । कईं सप्तसप्तमिका, कईं अष्टअष्टमिका, कईं नवनवमिका, कईं दशदशमिका–भिक्षु-प्रतिमा के धारक थे । कईं लघुमोकप्रतिमा, कईं यवमध्यचन्द्रप्रतिमा तथा कईं वज्रमध्यचन्द्रप्रतिमा के धारक थे ।

सूत्र - १६

तब श्रमण भगवान महावीर के अन्तेवासी बहुत से स्थविर, भगवान, जातिसम्पन्न, कुलसम्पन्न, बल-सम्पन्न, रूप-सम्पन्न, विनय-सम्पन्न, ज्ञान-सम्पन्न, दर्शन-सम्पन्न, चारित्र-सम्पन्न, लज्जा-सम्पन्न, लाघव-सम्पन्न–ओजस्वी, तेजस्वी, वचस्वी–प्रशस्तभाषी । क्रोधजयी, मानजयी, मायाजयी, लोभजयी, इन्द्रियजयी, निद्राजयी, परिषहजयी, जीवन की ईच्छा और मृत्यु के भय से रहित व्रतप्रधान, गुणप्रधान, करणप्रधान, चारित्रप्रधान, निग्रहप्रधान, निश्चय- प्रधान, आर्जवप्रधान, मार्दवप्रधान, लाघवप्रधान, क्रियादक्ष, क्षान्तिप्रधान, गुप्तिप्रधान, मुक्तिप्रधान, विद्याप्रधान, मन्त्रप्रधान, विद्याप्रधान, मन्त्रप्रधान, वेदप्रधान, ब्रह्मचर्यप्रधान, नयप्रधान, नियमप्रधान, सत्यप्रधान, शौचप्रधान, चारुवर्ण, लज्जा तथा तपश्री, शोधि-शुद्ध, अनिदान, अल्पौत्सुक्य थे । अपनी मनोवृत्तियों को संयम से बाहर नहीं जाने देते थे । अनुपम मनोवृत्तियुक्त थे, श्रमण-जीवन के सम्यक् निर्वाह में संलग्न थे, दान्त, वीतराग प्रभु द्वारा प्रतिपादित प्रवचन–प्रमाणभूत मानकर विचरण करते थे ।

वे स्थविर भगवान आत्मवाद के जानकार थे । दूसरों के सिद्धांतों के भी वेत्ता थे । कमलवन में क्रीड़ा आदि हेतु पुनः पुनः विचरण करते हाथी की ज्यों वे अपने सिद्धान्तों के पुनः पुनः अभ्यास या आवृत्ति के कारण उनसे सुपरिचित थे । वे अछिद्र निरन्तर प्रश्नोत्तर करते रहने में सक्षम थे । वे रत्नों की पिटारी के सदृश ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि दिव्य रत्नों से आपूर्ण थे । कुत्रिक–सदृश वे अपने लब्धि के कारण सभी अभीप्सित करने में समर्थ थे । परवादिप्रमर्दन, बारह अंगों के ज्ञाता थे । समस्त गणि-पिटक के धारक, अक्षरों के सभी प्रकार के संयोग के जानकार, सब भाषाओं के अनुगामी थे । वे सर्वज्ञ न होते हुए भी सर्वज्ञ सदृश थे । वे सर्वज्ञों की तरह अवितथ, वास्तविक या सत्य प्ररूपणा करत हुए, संयम तथा तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरते थे ।

सूत्र - १७

उस काल, उस समय श्रमण भगवान महावीर के अन्तेवासी बहुत से अनगार भगवान थे । वे ईर्या, भाषा,

आहार आदि की गवेषणा, याचना, पात्र आदि के उठाने, इधर-उधर रखने आदि तथा मल, मूत्र, खंखार, नाक आदि का मैल त्यागने में समित थे । वे मनोगुप्त, वचोगुप्त, कायगुप्त, गुप्त, गुप्तेन्द्रिय, गुप्त ब्रह्मचारी, अमम, अकिञ्चन, छिन्नग्रन्थ, छिन्नस्रोत, निरुपलेप, कांसे के पात्र में जैसे पानी नहीं लगता, उसी प्रकार स्नेह, आसक्ति आदि के लगाव से रहित, शंख के समान निरंगण, जीव के समान अप्रतिहत, जात्य, विशोधित स्वर्ण के समान, दर्पणपट्ट के सदृश कपटरहित शुद्धभावयुक्त, कछूए की तरह गुप्तेन्द्रिय, कमलपत्र के समान निर्लेप, आकाश के सदृश निरालम्ब, निरपेक्ष, वायु की तरह निरालेप, चन्द्रमा के समान सौम्य लेश्यायुक्त, सूर्य के समान दीप्ततेज, समुद्र के समान गम्भीर, पक्षी की तरह सर्वथा विप्रमुक्त, अनियतवास, मेरु पर्वत समान अप्रकम्प, शरद् ऋतु के जल के समान शुद्ध हृदययुक्त, गेंडे के सींग के समान एकजात, एकमात्र आत्मनिष्ठ, भारण्ड पक्षी के समान अप्रमत्त, हाथी के सदृश शौण्डीर वृषभ समान धैर्यशील, सिंह के समान दुर्धर्ष, पृथ्वी के समान सभी स्पर्शों को समभाव से सहने में सक्षम तथा घृत द्वारा भली भाँति हुत तप तेज से दीप्तिमान थे ।

उन पूजनीय साधुओं को किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं था । प्रतिबन्ध चार प्रकार का है–द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से तथा भाव से । द्रव्य की अपेक्षा से सचित्त, अचित्त तथा मिश्रित द्रव्यों में; क्षेत्र की अपेक्षा से गाँव, नगर, खेत, खलिहान, घर तथा आँगन में; काल की अपेक्षा से समय आवलिका, अयन एवं अन्य दीर्घकालिक संयोग में तथा भाव की अपेक्षा से क्रोध, अहंकार, माया, लोभ, भय या हास्य में उनका कोई प्रतिबन्ध नहीं था । वे साधु भगवान वर्षावास के चार महीने छोड़कर ग्रीष्म तथा हेमन्त दोनों के आठ महीनों तक किसी गाँव में एक रात तथा नगर में पाँच रात निवास करते थे । चन्दन समान वे अपना अपकार करने वाले का भी उपकार करने की वृत्ति रखते थे । वे मिट्टी के ढेले और स्वर्ण को एक समान समझते थे । सुख और दुःख में समान भाव रखते थे । वे ऐहिक तथा पारलौकिक आसक्ति से बंधे हुए नहीं थे । वे संसारपारगामी तथा कर्मों का निर्घातन हेतु अभ्युत्थित होते हुए विचरण करते थे ।

सूत्र - १८

इस प्रकार विहरणशील वे श्रमण भगवान आभ्यन्तर तथा बाह्य तपमूलक आचार का अनुसरण करते थे । आभ्यन्तर तप छह प्रकार का है तथा बाह्य तप भी छह प्रकार का है ।

सूत्र - १९

बाह्य तप क्या है ? बाह्य तप छह प्रकार के हैं–अनशन, अवमोदरिका, भिक्षाचर्या, रस-परित्याग, काय-क्लेश और प्रतिसंलीनता ।

अनशन क्या है ? अनशन दो प्रकार का है–१. इत्वरिक एवं २. यावत्कथिक । इत्वरिक क्या है ? इत्वरिक अनेक प्रकार का बतलाया गया है, जैसे–चतुर्थ भक्त, षष्ठ भक्त, अष्टम भक्त, दशम भक्त – चार दिन के उपवास, द्वादश भक्त – पाँच दिन के उपवास, चतुर्दश भक्त–छह दिन के उपवास, षोडश भक्त, अर्द्धमासिक भक्त, मासिक भक्त, द्वैमासिक भक्त, त्रैमासिक भक्त, चातुर्मासिक भक्त, पाञ्चमासिक भक्त, षाण्मासिक भक्त । यह इत्वरिक तप का विस्तार है ।

यावत्कथिक क्या है ? यावत्कथिक के दो प्रकार हैं–पादपोपगमन और भक्तपानप्रत्याख्यान । पादपोप-गमन क्या है ? पादपोपगमन के दो भेद हैं–१. व्याघातिम और २. निर्व्याघातिम । इस में प्रतिकर्म, हलन-चलन आदि क्रिया-प्रकिया का त्याग रहता है । इस प्रकार पादोपगमन यावत्कथिक अनशन होता है । भक्तप्रत्याख्यान क्या है ? भक्तप्रत्याख्यान के दो भेद बतलाए गए हैं–१. व्याघातिम, २. निर्व्याघातिम । भक्तप्रत्याख्यान अनशन में प्रतिकर्म नियमतः होता है । यह भक्त प्रत्याख्यान अनशन का विवेचन है ।

अवमोदरिका क्या है ? अवमोदरिका के दो भेद बतलाए गए हैं–द्रव्य-अवमोदरिका और भाव अवमोदरिका –द्रव्य-अवमोदरिका क्या है ? दो भेद बतलाए हैं–१. उपकरण-द्रव्य-अवमोदरिका, २. भक्तपान-अवमोदरिका–उपकरण-द्रव्य-अवमोदरिका क्या है ? तीन भेद बतलाए हैं–१. एक पात्र रखना, २. एक वस्त्र रखना, ३. एक मनोनुकूल निर्दोष उपकरण रखना । यह उपकरण-द्रव्य-अवमोदरिका । भक्तपान-द्रव्य-अवमोदरिका क्या है ? अनेक भेद बतलाये हैं, मुर्गी के अंड़े के परिमाण के केवल आठ ग्रास भोजन करना

अल्पाहार-अवमोदरिका है । मुर्गी के अंड़े के परिमाण से १२ ग्रास भोजन करना अपार्ध अवमोदरिका है । मुर्गी के अंड़े के परिमाण के सोलह ग्रास भोजन करना अर्थ अवमोदरिका है । मुर्गी के अंड़े के परिमाण के चौबीस ग्रास भोजन करना–चौथाई अव-मोदरिका है । मुर्गी के अंड़े के परिमाण के इकत्तीस ग्रास भोजन करना किञ्चत् न्यून–अवमोदरिका है । मुर्गी के अंड़े के परिमाण के बत्तीस ग्रास भोजन करने वाला प्रमाणप्राप्त है । भाव-अवमोदरिका क्या है ? अनेक प्रकार की है, जैसे–क्रोध, मान, माया और लोभ का त्याग, अल्पशब्द, अल्पझंझ–यह भावमोदरिका है ।

भिक्षाचर्या क्या है ? अनेक प्रकार की है–१. द्रव्याभिग्रहचर्या, २. क्षेत्राभिग्रहचर्या, ३. कालाभिग्रहचर्या, ४. भावाभिग्रहचर्या, ५. उत्क्षिप्तचर्या, ६. निक्षिप्तचर्या, ७. उक्षिप्त-निक्षिप्त-चर्या, ८. निक्षिप्त-उक्षिप्त-चर्या, ९. वर्तिष्यमाणचर्या, १०. संह्रियमाणचर्या, ११. उपनीतचर्या, १२. अपनीतचर्या, १३. उपनीतापनीतचर्या, १४. अज्ञातचर्या, १९. मौनचर्या, २०. दृष्ट-लाभ, २१. अदृष्ट-लाभ, २२. पृष्ट-लाभ, २३. अपृष्टलाभ, २४. भिक्षालाभ, २५. अभक्षालाभ, २६. अन्नग्लायक, २७. उपनिहित, २८. परिमितपिण्डपातिक, २९. शुद्धैषणिक, ३०. संख्या-दत्तिक–यह भिक्षाचर्या का विस्तार है ।

रसपरित्याग क्या है ? अनेक प्रकार का है, जैसे–१. निर्विकृतिक, २. प्रणीत रसपरित्याग, ३. आयंबिल, ४. आयामसिक्थभोजी, ५. अरसाहार, ६. विरसाहार, ७. अन्ताहार, ८. प्रान्ताहार, ९. रूक्षाहार–यह रस-परित्याग का विश्लेषण है । काय-क्लेश क्या है ? अनेक प्रकार का है, जैसे–१. स्थानस्थितिक, २. उत्कुटुकासनिक, ३. प्रतिमास्थायी, ४. वीरासनिक, ५. नैषद्यिक, ६. आतापक, ७. अप्रावृतक, ८. अकण्डूयक, ९. अनिष्ठीवक, १०. सर्वगात्र–परिकर्म विभूषा-विप्रमुक्त–यह कायक्लेश का विस्तार है । भगवान महावीर के श्रमण उक्त रूप में कायक्लेश तप का अनुष्ठान करते थे ।

प्रतिसंलीनता क्या है ? चार प्रकार की है–१. इन्द्रिय-प्रतिसंलीनता, २. कषायप्रतिसंलीनता, ३. योग प्रति-संलीनता, ४. विविक्त-शयनासन-सेवनता–

इन्द्रिय प्रतिसंलीनता क्या है ? पाँच प्रकार की है–१. श्रोत्रेन्द्रिय-विषय-प्रचार-निरोध, २. चक्षुरिन्द्रिय-विषय -प्रचार-निरोध, ३. घ्राणेन्द्रिय-विषय-प्रचार-निरोध, ४. जिह्वेन्द्रिय-विषय-प्रचार-निरोध, ५. स्पर्शेन्द्रिय-विषय-प्रचार-निरोध । यह इन्द्रिय-प्रतिसंलीनता का विवेचन है । कषाय-प्रतिसंलीनता क्या है ? चार प्रकार की है–१. क्रोध के उदय का निरोध, २. मान के उदय का निरोध, ३. माया के उदय का निरोध, ४. लोभ के उदय का निरोध–यह कषाय-प्रतिसंलीनता का विवेचन है ।

योग-प्रतिसंलीनता क्या है ? तीन प्रकार की है–१. मनोयोग-प्रतिसंलीनता, २. वाग्योग-प्रतिसंलीनता तथा ३. काययोग-प्रतिसंलीनता । मनोयोग-प्रतिसंलीनता क्या है ? अकुशल-मन का निरोध, अथवा कुशल मन का प्रवर्तन करना, वाग्योग-प्रतिसंलीनता क्या है ? अकुशल वचन का निरोध और कुशल वचन का अभ्यास करना वाग्योग-प्रतिसंलीनता है । काययोग-प्रतिसंलीनता क्या है ? हाथ, पैर आदि सुसमाहित कर, कछूए के सदृश अपनी इन्द्रियों को गुप्त कर, सारे शरीर को संवृत कर–सुस्थिर होना काययोग-प्रतिसंलीनता है । यह योग-प्रतिसंलीनता का विवेचन है । विविक्त-शय्यासन-सेवनता क्या है ? आराम, पुष्पवाटिका, उद्यान, देवकुल, छतरियाँ, सभा, प्रपा, पणित-गृह–गोदाम, पणितशाला, ऐसे स्थानों में, जो स्त्री, पशु तथा नपुंसक के संसर्ग से रहित हो, प्रासुक, अचित्त, एषणीय, निर्दोष पीठ, फलक, शय्या, आस्तरण प्राप्त कर विहरण करना विविक्त-शय्यासन-सेवनता है । यह प्रति-संलीनता का विवेचन है, जिसके साथ बाह्य तप का वर्णन सम्पन्न होता है । श्रमण भगवान महावीर के अन्तेवासी अनगार उपर्युक्त विविध प्रकार के बाह्य तप के अनुष्ठाता थे ।

सूत्र - २०

आभ्यन्तर तप क्या है ? आभ्यन्तर तप छह प्रकार का कहा गया है–१. प्रायश्चित्त, २. विनय, ३. वैयावृत्य, ४. स्वाध्याय, ५. ध्यान तथा ६. व्युत्सर्ग ।

प्रायश्चित्त क्या है ? प्रायश्चित्त दस प्रकार का कहा गया है–१. आलोचनार्ह, २. प्रतिक्रमणार्ह, ३. तदुभयार्ह, ४. विवेकार्ह, ५. व्युत्सर्गार्ह, ६. तपोऽर्ह, ७. छेदार्ह, ८. मूलार्ह, ९. अनवस्थाप्यार्ह, १०. पाराञ्चिकार्ह ।

विनय क्या है ? सात प्रकार का है–ज्ञान-विनय, दर्शन-विनय, चारित्र-विनय, मनोविनय, वचन-विनय, काय-विनय, लोकोपचार-विनय । ज्ञान-विनय क्या है ? पाँच भेद हैं–आभिनिबोधिक ज्ञान विनय, श्रुतज्ञान-विनय, अवधिज्ञान-विनय, मनःपर्यवज्ञान-विनय, केवलज्ञान-विनय ।

दर्शन-विनय क्या है ? दो प्रकार का शुश्रूषा-विनय, अनत्याशातना-विनय । शुश्रूषा-विनय क्या है ? अनेक प्रकार का है–अभ्युत्थान, आसनाभिग्रह, आसन-प्रदान, गुरुजनों का सत्कार करना, सम्मान करना, यथाविधि वन्दन-प्रणमन करना, कोई बात स्वीकार या अस्वीकार करते समय हाथ जोड़ना, आते हुए गुरुजनों के सामने जाना, बैठे हुए गुरुजनों के समीप बैठना, उनकी सेवा करना, जाते हुए गुरुजनों को पहुँचाने जाना । यह शुश्रूषा-विनय है । अनत्याशातना-विनय क्या है ? पैंतालीस भेद हैं–१. अर्हंतों की, २. अर्हत्-प्रज्ञप्त धर्म की, ३. आचार्यों की, ४. उपाध्यायों की, ५. स्थविरों, ६. कुल, ७. गण, ८. संघ, ९. क्रियावान् की, १०. सांभोगिक–श्रमण की, ११. मति-ज्ञान की, १२. श्रुत-ज्ञान की, १३. अवधि-ज्ञान, १४. मनःपर्यव-ज्ञान की तथा १५. केवल-ज्ञान की आशातना नहीं करना । इन पन्द्रह की भक्ति, उपासना, बहुमान, गुणों के प्रति तीव्र भावानुरागरूप १५ भेद तथा इनकी यशस्विता, प्रशस्ति एवं गुणकीर्तन रूप और १५ भेद–यों अनत्याशातना-विनय के कुल ४५ भेद होते हैं ।

चारित्रविनय क्या है ? पाँच प्रकार का है–सामायिकचारित्र विनय, छेदोपस्थापनीयचारित्र-विनय, परिहार-विशुद्धिचारित्र-विनय, सूक्ष्मसंपरायचारित्र-विनय, यथाख्यातचारित्र-विनय । यह चारित्र-विनय है ।

मनोविनय क्या है ? दो प्रकार का–१. प्रशस्त मनोविनय, २. अप्रशस्त मनोविनय । अप्रशस्त मनोविनय क्या है ? जो मन सावद्य, सक्रिय, कर्कश, कटुक, निष्ठुर, परुष, सूखा, आस्रवकारी, छेदकर, भेदकर, परितापनकर, उपद्रवणकर, भूतोपघातिक है, वह अप्रशस्त मन है । वैसी मनःस्थिति लिये रहना अप्रशस्त मनोविनय है । प्रशस्त मनोविनय किसे कहते हैं ? जैसे अप्रशस्त मनोविनय का विवेचन किया गया है, उसी के आधार पर प्रशस्त मनो-विनय को समझना चाहिए । अर्थात् प्रशस्त मन, अप्रशस्त मन से विपरीत होता है । वचन-विनय को भी इन्हीं पदों से समझना चाहिए । अर्थात् अप्रशस्त-वचन-विनय तथा प्रशस्त-वचन-विनय ।

कायविनय क्या है ? काय-विनय दो प्रकार का बतलाया गया है–१. प्रशस्त कायविनय, २. अप्रशस्त काय-विनय । अप्रशस्त कायविनय क्या है ? सात भेद हैं–१. अनायुक्त गमन, २. अनायुक्त स्थान, ३. अनायुक्त निषीदन, ४. अनायुक्त त्वग्वर्तन, ५. अनायुक्त उल्लंघन, ६. अनायुक्त प्रलंघन, ७. अनायुक्त सर्वेन्द्रियकाययोग-योजनता यह अप्रशस्त काय-विनय है । प्रशस्त कायविनय क्या है ? प्रशस्त कायविनय को अप्रशस्त कायविनय की तरह समझ लेना चाहिए । यह प्रशस्त कायविनय है । इस प्रकार यह कायविनय का विवेचन है ।

लोकोपचार-विनय क्या है ? लोकोपचार विनय के सात भेद हैं–१. अभ्यासवर्तिता, २. परच्छन्दानुवर्तिता, ३. कायहेतु, ४. कृत-प्रतिक्रिया, ५. आर्त-गवेषणता, ६. देशकालज्ञता, ७. सर्वार्थाप्रतिलोमता–यह लोकोपचार-विनय हैं । इस प्रकार यह विनय का विवेचन है ।

वैयावृत्य क्या है ? वैयावृत्य के दस भेद हैं–१. आचार्य का वैयावृत्य, २. उपाध्याय का वैयावृत्य, ३. शैक्ष–नवदीक्षित श्रमण का वैयावृत्य, ४. ग्लान–रुग्णता आदि से पीड़ित का वैयावृत्य, ५. तपस्वी–तेला आदि तप-निरत का वैयावृत्य, ६. स्थविर–वय, श्रुत और दीक्षा-पर्याय में ज्येष्ठ का वैयावृत्य, ७. साधर्मिक का वैयावृत्य, ८. कुल का वैयावृत्य, ९. गण का वैयावृत्य, १०. संघ का वैयावृत्य ।

स्वाध्याय क्या है ? पाँच प्रकार का है–१. वाचना, २. प्रतिपृच्छना, ३. परिवर्तना, ४. अनुप्रेक्षा, ५. धर्मकथा। यह स्वाध्याय का स्वरूप है । ध्यान क्या है ? ध्यान के चार भेद हैं–१. आर्त ध्यान, २. रौद्र ध्यान, ३. धर्म ध्यान और ४. शुक्ल ध्यान ।

आर्त्तध्यान चार प्रकार का बतलाया गया है–१. मन को प्रिय नहीं लगने वाले विषय, स्थितियाँ आने पर उनके वियोग के सम्बन्ध में आकुलतापूर्ण चिन्तन करना । २. मन को प्रिय लगने वाले विषयों के प्राप्त होने पर उनके अवियोग का आकुलतापूर्ण चिन्तन करना । ३. रोग हो जाने पर उनके मिटने के सम्बन्ध में आकुलतापूर्ण चिन्तन करना । ४. पूर्व-सेवित काम-भोग प्राप्त होने पर, फिर कभी उनका वियोग न हो, यों आकुलतापूर्ण चिन्तन करना । आर्त्तध्यान के चार लक्षण बतलाये गये हैं–१. क्रन्दनता, २. शोचनता, ३. तेपनता, ४. विलपनता ।

रौद्रध्यान चार प्रकार का है, इस प्रकार है–१. हिंसानुबन्धी, २. मृषानुबन्धी, ३. स्तैन्यानुबन्धी, ४. संरक्षणा नुबन्धी, रौद्र ध्यान के चार लक्षण बतलाये गये हैं–१. उत्सन्नदोष, २. बहुदोष, ३. अज्ञानदोष, ४. आमरणान्त-दोष

धर्म ध्यान स्वरूप, लक्षण, आलम्बन तथा अनुप्रेक्षा भेद से चार प्रकार का कहा गया है । प्रत्येक के चार-चार भेद हैं । स्वरूप की दृष्टि से धर्म-ध्यान के चार भेद इस प्रकार हैं–१. आज्ञा-विचय, २. अपाय-विचय, ३. विपाक-विचय, ४. संस्थान-विचय, धर्म-ध्यान के चार लक्षण बतलाये गये हैं । वे इस प्रकार हैं–१. आज्ञा-रुचि, २. निसर्ग-रुचि, ३. उपदेश-रुचि, ४. सूत्र-रुचि, धर्म-ध्यान के चार आलम्बन कहे गये हैं–१. वाचना, २. पृच्छना, ३. परिवर्तना, ४. धर्म-कथा । धर्म-ध्यान की चार अनुप्रेक्षाएं–बतलाई गई हैं । १. अनित्यानुप्रेक्षा, २. अशरणानुप्रेक्षा, ३. एकत्वानुप्रेक्षा, ४. संसारानुप्रेक्षा ।

शुक्ल ध्यान स्वरूप, लक्षण, आलम्बन तथा अनुप्रेक्षा के भेद से चार प्रकार का कहा गया है । इनमें से प्रत्येक के चार-चार भेद हैं । स्वरूप की दृष्टि से शुक्ल ध्यान के चार भेद इस प्रकार हैं–(१) पृथक्त्व-वितर्क-सविचार, (२) एवत्व-वितर्क-अविचार, सूक्ष्मक्रिय-अप्रतिपाति समुच्छिन्नक्रिय-अनिवृत्ति-शुक्ल ध्यान के चार लक्षण बतलाये गये हैं–१. विवेक, २. व्युत्सर्ग, ३. अव्यथा, ४. असंमोह । १. क्षान्ति, २. मुक्ति, ३.आर्जव, ४. मार्दव, शुक्ल ध्यान की चार अनुप्रेक्षाएं हैं । १. अपायानुप्रेक्षा, २. अशुभानुप्रेक्षा, ३.अनन्तवृत्तितानुप्रेक्षा, ४. विपरिणामानुप्रेक्षा ।

व्युत्सर्ग क्या है–दो भेद हैं–१. द्रव्य-व्युत्सर्ग, २. भाव-व्युत्सर्ग, द्रव्य-व्युत्सर्ग क्या है–द्रव्य-व्युत्सर्ग के चार भेद हैं । १. शरीर-व्युत्सर्ग, २. गण-व्युत्सर्ग, ३. उपधि-व्युत्सर्ग, ४. भक्त-पान-व्युत्सर्ग । भाव-व्युत्सर्ग क्या है ? भाव-व्युत्सर्ग के तीन भेद कहे गये हैं–१. कषाय-व्युत्सर्ग, २. संसार-व्युत्सर्ग, ३. कर्म-व्युत्सर्ग । कषाय-व्युत्सर्ग क्या है ? कषाय-व्युतसर्ग के चार भेद हैं, १. क्रोध-व्युत्सर्ग, २. मान-व्युत्सर्ग, ३. माया-व्युत्सर्ग, ४. लोभ-व्युत्सर्ग । यह कषाय-व्युत्सर्ग का विवेचन है । संसारव्युत्सर्ग क्या है ? संसारव्युत्सर्ग चार प्रकार का है । १. नैरयिक-संसारव्युत्सर्ग २. तिर्यक्-संसारव्युत्सर्ग, ३. मनुज-संसारव्युत्सर्ग, ४. देवसंसार-व्युत्सर्ग । यह संसार-व्युत्सर्ग का वर्णन है । कर्म-व्युत्सर्ग क्या है ? कर्म-व्युत्सर्ग आठ प्रकार का है । वह इस प्रकार है–१. ज्ञानावरणीय-कर्म-व्युत्सर्ग, २. दर्शना-वरणीय-कर्म-व्युत्सर्ग, ३. वेदनीय-कर्म-व्युत्सर्ग, ४. मोहनीय-कर्म-व्युत्सर्ग, ५. आयुष्य-कर्म-व्युत्सर्ग, ६. नाम-कर्म-व्युत्सर्ग, ७. गोत्र-कर्म-व्युत्सर्ग, ८. अन्तराय-कर्म-व्युत्सर्ग । यह कर्म-व्युत्सर्ग है ।

सूत्र - २१

उस काल, उस समय–जब भगवान महावीर चम्पा में पधारे, उनके साथ उनके अनेक अन्तेवासी अनगार थे। उनके कईं एक आचार यावत् विपाकश्रुत के धारक थे । वे वहीं भिन्न-भिन्न स्थानों पर एक-एक समूह के रूप में, समूह के एक-एक भाग के रूप में तथा फूटकर रूप में विभक्त होकर अवस्थित थे । उनमें कईं आगमों की वाचना देते थे । कईं प्रतिपृच्छा करते थे । कईं अधीत पाठ की परिवर्तना करते थे । कईं अनुप्रेक्षा करते थे । उनमें कईं आक्षेपणी, विक्षेपणी, संवेगनी, तथा निर्वेदनी, यों अनेक प्रकार की धर्म-कथाएं कहते थे । उनमें कईं अपने दोनों घुटनों को ऊंचा उठाये, मस्तक को नीचा किये–ध्यानरूप कोष्ठ में प्रविष्ट थे । इस प्रकार वे अनगार संयम तथा तप से आत्मा को भावित करते हुए अपनी जीवन-यात्रा चला रहे थे ।

वे (अनगार) संसार के भय से उद्विग्न एवं चिन्तित थे । यह संसार एक समुद्र है । जन्म, वृद्धावस्था तथा मृत्यु द्वारा जनित घोर दुःख रूप प्रक्षुभित प्रचुर जल से भरा है । उस जलमें संयोग-वियोग रूपमें लहरें उत्पन्न हो रही हैं । चिन्तापूर्ण प्रसंगोंसे वे लहरें दूर-दूर तक फैलती जा रही हैं। वध तथा बन्धन रूप विशाल, विपुल कल्लोलें उठ रही हैं, जो करुण विलपित तथा लोभकी कलकल करती तीव्र ध्वनि युक्त हैं। जल का ऊपरी भाग तिरस्कार रूप जागों से ढ़ँका है । तीव्र निन्दा, निरन्तर अनुभूत रोग-वेदना, औरों से प्राप्त होता अपमान, विनिपात, कटु वचन द्वारा निर्भर्त्सना, तत्प्रतिबद्ध ज्ञानावरणीय आदि कर्मों के कठोर उदय की टक्कर से उठती हुई तरंगों से वह परिव्याप्त है । नित्य मृत्यु-भय रूप है । यह संसार रूप समुद्र कषाय पाताल से परिव्याप्त है । इस में लाखों जन्मों में अर्जित पापमय जल संचित है । अपरिमित ईच्छाओं से म्लान बनी बुद्धि रूपी वायु के वेग से ऊपर उछलते सघन जल-कणों के कारण अंधकारयुक्त तथा आशा, पिपासा द्वारा उजले झागों की तरह वह धवल है ।

संसार-सागर में मोह के रूप में बड़े-बड़े आवर्त हैं । उनमें भोग रूप भंवर हैं । अत एव दुःखरूप जल

भ्रमण करता हुआ, चपल होता हुआ, ऊपर उछलता हुआ, नीचे गिरता हुआ विद्यमान है । अपने में स्थित प्रमाद-रूप प्रचण्ड, अत्यन्त दुष्ट, नीचे गिरते हुए, बुरी तरह चीखते-चिल्लाते हुए क्षुद्र जीव-समूहों से यह (समुद्र) व्याप्त है। वही मानो उसका भयावह घोष या गर्जन है । अज्ञान ही भव-सागर में घूमते हुए मत्स्यों रूप में है । अनुपशान्त इन्द्रिय-समूह उसमें बड़े-बड़े मगरमच्छ हैं, जिनके त्वरापूर्वक चलते रहने से जल, क्षुब्ध हो रहा है, नृत्य सा कर रहा है, चपलता-चंचलतापूर्वक चल रहा है, घूम रहा है । यह संसार रूप सागर अरति, भय, विषाद, शोक तथा मिथ्यात्व रूप पर्वतों से संकुल है । यह अनादि काल से चले आ रहे कर्म-बंधन, तत्प्रसूत क्लेश रूप कर्दम के कारण अत्यन्त दुस्तर है । यह देव-गति, मनुष्य-गति, तिर्यक्-गति तथा नरक-गति में गमनरूप कुटिल परिवर्त है, विपुल ज्वार रहित है । चार गतियों के रूपमें इसके चार अन्त हैं । यह विशाल, अनन्त, रौद्र तथा भयानक दिखाई देनेवाला है। इस संसार-सागर को वे शीलसम्पन्न अनगार संयमरूप जहाज द्वारा शीघ्रतापूर्वक पार कर रहे थे ।

वह (संयम-पोत) धृति, सहिष्णुता रूप रज्जू से बँधा होने के कारण निष्प्रकम्प था । संवर तथा वैराग्य रूप उच्च कूपक था । उस जहाज में ज्ञान रूप श्वेत वस्त्र का ऊंचा पाल तना हुआ था । विशुद्ध सम्यक्त्व रूप कर्णधार उसे प्राप्त था । वह प्रशस्त ध्यान तथा तप रूप वायु से अनुप्रेरित होता हुआ प्रधावित हो रहा था । उसमें उद्यम, व्यवसाय, तथा परखपूर्वक गृहीत निर्जरा, यतना, उपयोग, ज्ञान, दर्शन (चारित्र) तथा विशुद्ध व्रत रूप श्रेष्ठ माल भरा था । वीतराग प्रभु के वचनों द्वारा उपदिष्ट शुद्ध मार्ग से वे श्रमण रूप उत्तम सार्थवाह, सिद्धिरूप महापट्टन की ओर बढ़े जा रहे थे । वे सम्यक् श्रुत, उत्तम संभाषण, प्रश्न तथा उत्तम आकांक्षा–वे अनगार ग्रामों में एक-एक रात तथा नगरों में पाँच-पाँच रात रहते हुए जितेन्द्रिय, निर्भय, गतभय, सचित्त, अचित्त, मिश्रित, द्रव्यों में वैराग्ययुक्त, संयत, विरत, अनुरागशील, मुक्त, लघुक, निरवकांक्ष, साधु, एवं निभृत होकर धर्म आराधना करते थे

सूत्र - २२

उस काल, उस समय श्रमण भगवान महावीर के पास अनेक असुरकुमार देव प्रादुर्भुत हुए । काले महा-नीलमणि, नीलमणि, नील की गुटका, भैंसे के सींग तथा अलसी के पुष्प जैसा उसका काला वर्ण तथा दीप्ति थी । उनके नेत्र खिले हुए कमल सदृश थे । नेत्रों की भौहें निर्मल थीं । उनके नेत्रों का वर्ण कुछ-कुछ सफेद, लाल तथा ताम्र जैसा था । उनकी नासिकाएं गरुड के सदृश, लम्बी, सीधी तथा उन्नत थी । उनके होठ परितुष्ट मूंगे एवं बिम्ब फल के समान लाल थे । उनकी दन्तपंक्तियाँ स्वच्छ चन्द्रमा के टुकड़ों जैसी उज्ज्वल तथा शंख, गाय के दूध के जाग, जलकण एवं कमलनाल के सदृश धवल थीं । उनकी हथेलियाँ, पैरों के तलवे, तालु तथा जिह्वा–अग्नि में गर्म किये हुए, धोये हुए पुनः तपाये हुए, शोधित किये हुए निर्मल स्वर्ण के समान लालिमा लिये हुए थे । उनके केश काजल तथा मेघ के सदृश काले तथा रुचक मणि के समान रमणीय और स्निग्ध, मुलायम थे ।

उनके बायें कानों में एक-एक कुण्डल था । शरीर आर्द्र चन्दन से लिप्त थे । सीलघ्र-पुष्प जैसे कुछ-कुछ श्वेत या लालिमा लिये हुए श्वेत, सूक्ष्म, असंक्लिष्ट, वस्त्र सुन्दर रूप में पहन रखे थे । वे बाल्यावस्था को पार कर चूके थे, मध्यम वय नहीं प्राप्त किये हुए थे, भद्र यौवन किशोरावस्था में विद्यमान थे । उनकी भुजाएं तलभंगकों, त्रुटिकाओं, अन्यान्य उत्तम आभूषणों तथा निर्मल रत्नों, मणियों से सुशोभित थीं । हाथों की दशों अंगुलियाँ, अंगुठियों से मंडित थीं । मुकुटों पर चूडामणि रूप में विशेष चिह्न थे । वे सुरूप, पर ऋद्धिशाली, परत द्युतिमान, अत्यन्त बलशाली, परम यशस्वी, परम सुखी तथा अत्यन्त सौभाग्यशाली थे । उनके वक्षःस्थलों पर हार सुशोभित हो रहे थे । वे अपनी भुजाओं पर कंकण तथा भुजाओं को सुस्थिर बनाये रखनेवाली आभरणात्मक पट्टियाँ एवं अंगद धारण किये हुए थे । केसर, कस्तूरी आदिसे मण्डित कपोलों पर कुंडल व अन्य कर्णभूषण शोभित थे ।

वे विचित्र, हस्ताभरण धारण किये हुए थे । उनके मस्तकों पर तरह-तरह की मालाओं से युक्त मुकूट थे । वे कल्याणकृत, अनुपहत, प्रवर पोशाक पहने हुए थे । वे मंगलमय, उत्तम मालाओं एवं अनुलेपन से युक्त थे । उनके शरीर देदीप्यमान थे । वनमालाएं उनके गलों से घुटनों तक लटकती थीं । उन्होंने दिव्य–वर्ण, गन्ध, रूप, स्पर्श, संघात, संस्थान, ऋद्धि, द्युति, प्रभा, कान्ति, अर्चि, तेज, लेश्या–तदनुरूप प्रभामंडल से दशों दिशाओं को उद्योतित, प्रभासित करते हुए श्रमण भगवान महावीर के समीप आ-आकर अनुरागपूर्वक तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिणा की, वन्दन-नमस्कार किया । वैसा कर वे भगवान महावीर के न अधिक समीप, न अधिक दूर सूनने की ईच्छा रखते

हुए, प्रणाम करते हुए, विनयपूर्वक सामने हाथ जोड़े हुए इनकी पर्युपासना करने लगे ।

सूत्र - २३

उस काल, उस समय श्रमण भगवान महावीर के पास असुरेन्द्रवर्जित, भवनवासी देव प्रकट हुए । उनके मुकूट क्रमशः नागफण, गरुड़, वज्र, पूर्ण कलश, सिंह, अश्व, हाथी, मगर तथा वर्द्धमानक थे । वे सुरूप, परम ऋद्धिशाली, परम द्युतिमान, अत्यन्त बलशाली, परम यशस्वी, परम सुखी तथा अत्यन्त सौभाग्यशाली थे । उनके वक्षःस्थलों पर हार सुशोभित हो रहे थे । वे अपनी भुजाओं पर कंकण तथा भुजाओं को सुस्थिर बनाये रखने वाली पट्टियाँ एवं अंगद धारण किये हुए थे । उनके केसर, कस्तूरी आदि से मण्डित कपोलों पर कुंडल व अन्य कर्णभूषण शोभित थे । वे विचित्र आभूषण धारण किये हुए थे । उनके मस्तकों पर तरह तरह की मालाओं से युक्त मुकुट थे । वे कल्याणकृत अनुपहत, प्रवर पोशाक पहने हुए थे । वे मंगलमय, उत्तम मालाओं एवं अनुलेपन से युक्त थे । उनके शरीर देदीप्यमान थे । वनमालाएं, उनके गलों से घुटनों तक लटकती थीं । उन्होंने दिव्य वर्ण, गन्ध, रूप, स्पर्श, संघात, संस्थान, ऋद्धि, द्युति, प्रभा, कान्ति, अर्चि, तेज, लेश्या, तदनुरूप भामण्डल से दशों दिशाओं को उद्योतित, प्रभासित करते हुए श्रमण भगवान महावीर के समीप आ-आकर अनुरागपूर्वक प्रदक्षिणा की, वन्दन-नमस्कार किया । वे भगवान महावीर के न अधिक समीप, न अधिक दूर, सूनने की ईच्छा रखते हुए, प्रणाम करते हुए, विनय पूर्वक सामने हाथ जोड़ते हुए उनकी पर्युपासना करने लगे ।

सूत्र - २४

उस काल, उस समय श्रमण भगवान महावीर के समीप पिशाच, भूत, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किंपुरुष, महाकाय भुजगपति, गन्धर्व गण, अणपन्निक, पणपन्निक, ऋषिवादिक, भूतवादिक, क्रन्दित, महाक्रन्दित, कूष्मांड, प्रयत–ये व्यन्तर जाति के देव प्रकट हुए । वे देव अत्यन्त चपल चित्तयुक्त, क्रीडाप्रिय तथा परिहासप्रिय थे । उन्हें गंभीर हास्य तथा वैसी ही वाणी प्रिय थी । वे वैक्रिय लब्धि द्वारा अपनी ईच्छानुसार विरचित वनमाला, फूलों का सेहरा या कलंगी, मुकुट, कुण्डल आदि आभूषणों द्वारा सुन्दर-रूप में सजे हुए थे । सब ऋतुओं में खिलने वाले, सुगन्धित पुष्पों से सुरचित, लम्बी, शोभित होती हुई, सुन्दर, विकसित वनमालाओं द्वारा उनके वक्षःस्थल बड़े आह्लादकारी प्रतीत होते थे । वे कामगम, कामरूपधारी थे । वे भिन्न-भिन्न रंग के, उत्तम, चित्र-विचित्र चमकीले वस्त्र पहने हुए थे । अनेक देशों की वेशभूषा के अनुरूप उन्होंने भिन्न-भिन्न प्रकार की पोशाकें धारण कर रखी थीं । वे प्रमोदपूर्ण काम-कलह, क्रीड़ा तथा तज्जनित कोलाहल में प्रीति मानते थे । वे बहुत हँसने वाले तथा बहुत बोलने वाले थे । वे अनेक मणियों एवं रत्नों से विविध रूप में निर्मित चित्र-विचित्र चिह्न धारण किये हुए थे । वे सुरूप तथा परम ऋद्धि सम्पन्न थे । पूर्व समागत देवों की तरह यथाविधि वन्दन-नमन कर श्रमण भगवान महावीर की पर्युपासना करने लगे ।

सूत्र - २५

उस काल, उस समय श्रमण भगवान महावीर के सान्निध्य में बृहस्पति, चन्द्र, सूर्य, शुक्र, शनैश्चर, राहु, धूमकेतु, बुध तथा मंगल, जिनका वर्ण तपे हुए स्वर्ण-बिन्दु के समान दीप्तिमान था–(ये) ज्योतिष्क देव प्रकट हुए। इनके अतिरिक्त ज्योतिश्चक्र में परिभ्रमण करने वाले केतु आदि ग्रह, अट्ठाईस प्रकार के नक्षत्र देवगण, नाना आकृतियों के पाँच वर्ण के तारे प्रकट हुए । उनमें स्थित रहकर प्रकाश करने वाले तथा अविश्रान्त तया गतिशील-दोनों प्रकार के ज्योतिष्क देव थे । हर किसी ने अपने-अपने नाम से अंकित अपना विशेष चिह्न अपने मुकूट पर धारण कर रखा था । वे परम ऋद्धिशाली देव भगवान की पर्युपासना करने लगे ।

सूत्र - २६

उस काल, उस समय श्रमण भगवान महावीर समक्ष सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म, लान्तक, महाशुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण तथा अच्युत देवलोकों के अधिपति–इन्द्र अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक प्रादुर्भूत हुए । जिनेश्वरदेव के दर्शन पाने की उत्सुकता और तदर्थ अपने वहाँ पहुँचने से उत्पन्न हर्ष से वे प्रफुल्लित थे । जिनेन्द्र प्रभु का वन्दन-स्तवन करनेवाले वे देव पालक, पुष्पक, सौमनस, श्रीवत्स, नन्द्यावर्त, कामगम, प्रीतिगम,

मनोगम, विमल तथा सर्वतोभद्र नामक अपने-अपने विमानों से भूमि पर ऊतरे । वे मृग, महिष, वराह, छगल, दर्दुर, हय, गजपति, भुजग, खड्ग, तथा वृषभ के चिह्नों से अंकित मुकूट धारण किये हुए थे। वे श्रेष्ठ मुकूट सुहाते उनके सुन्दर मस्तकों पर विद्यमान थे । कुंडलों की उज्ज्वल दीप्ति से उनके मुख उद्योतित थे । मुकूटों से उनके मस्तक दीप्त थे । वे लाल आभा लिये हुए, पद्मगर्भ सदृश गौर कान्तिमय, श्वेत वर्णयुक्त थे । शुभ वर्ण, गन्ध, स्पर्श आदि के निष्पादनमें उत्तम वैक्रियलब्धि धारक थे । वे तरह-तरह के वस्त्र, सुगन्धित द्रव्य तथा मालाएं धारण किये हुए थे। वे परम ऋद्धिशाली एवं परम द्युतिमान थे। हाथ जोड़ कर भगवान की पर्युपासना करने लगे

उस समय भगवान महावीर के समीप अनेक समूहों में अप्सराएं उपस्थित हुईं । उनकी दैहिक कान्ति अग्नि में तपाये गए, जल से स्वच्छ किये गये स्वर्ण जैसी थी । वे बाल-भाव को अतिक्रान्त कर यौवन में पदार्पण कर चूकी थी । उनका रूप अनुपम, सुन्दर एवं सौम्य था । उनके स्तन, नितम्ब, मुख, हाथ, पैर तथा नेत्र लावण्य एवं यौवन से विलसित, उल्लसित थे । दूसरे शब्दों में उनके अंग-अंग में सौन्दर्य-छटा लहराती थी । वे निरुपहत, सरस सिक्त तारुण्य से विभूषित थी । उनका रूप, सौन्दर्य, यौवन सुस्थिर था, जरा से विमुक्त था । वे देवियाँ सुरम्य वेशभूषा, वस्त्र, आभरण आदि से सुसज्जित थीं । उनके ललाट पर पुष्प जैसी आकृति में निर्मित आभूषण, उनके गले में सरसों जैसे स्वर्ण-कणों तथा मणियों से बनी कंठियाँ, कण्ठसूत्र, कंठले, अठारह लड़ियों के हार, नौ लड़ियों के अर्द्धहार, बहुविध मणियों से बनी मालाएं, चन्द्र, सूर्य आदि अनेक आकार की मोहरों की मालाएं, कानों में रत्नों के कुण्डल, बालियाँ, बाहुओंमें त्रुटिक, बाजूबन्द, कलाइयों में मानिक-जड़े कंकण, अंगुलियों में अंगुठियाँ, कमरमें सोने की करधनियाँ, पैरोंमें सुन्दर नूपुर, तथा सोने के कड़ले आदि बहुत प्रकार के गहने सुशोभित थे ।

वे पँचरंगे, बहुमूल्य, नासिका से नीकलते निःश्वास मात्र से जो उड़ जाए–ऐसे अत्यन्त हलके, मनोहर, सुकोमल, स्वर्णमय तारों से मंडित किनारों वाले, स्फटिक-तुल्य आभायुक्त वस्त्र धारण किये हुए थीं । उन्होंने बर्फ, गोदुग्ध, मोतियों के हार एवं जल-कण सदृश स्वच्छ, उज्ज्वल, सुकुमार, रमणीय, सुन्दर बुने हुए रेशमी दुपट्टे ओढ़ रखे थे । वे सब ऋतुओं में खिलने वाले सुरभित पुष्पों की उत्तम मालाएं धारण किये हुए थीं । चन्दन, केसर आदि सुगन्धमय पदार्थों से निर्मित देहरञ्जन से उनके शरीर रञ्जित एवं सुवासित थे, श्रेष्ठ धूप द्वारा धूपित थे । उनके मुख चन्द्र जैसी कान्ति लिये हुए थे । उनकी दीप्ति बिजली की द्युति और सूरज के तेज सदृश थी । उनकी गति, हँसी, बोली, नयनों के हावभाव, पारस्परिक आलाप-संलाप इत्यादि सभी कार्य-कलाप नैपुण्य और लालित्ययुक्त थे। उनका संस्पर्श शिरीष पुष्प और नवनीत जैसा मृदुल तथा कोमल था । वे निष्कलुष, निर्मल, सौम्य, कमनीय, प्रियदर्शन थीं । वे भगवान के दर्शन की उत्कण्ठा से हर्षित थीं ।

सूत्र - २७

उस समय चम्पा नगरी के सिंघाटकों, त्रिकों, चतुष्कों, चत्वरों, चतुर्मुखों, राजमार्गों, गलियों में मनुष्यों की बहुत आवाज आ रही थी, बहुत लोग शब्द कर रहे थे, आपस में कह रहे थे, फुसफुसाहट कर रहे थे । लोगों का बड़ा जमघट था । वे बोल रहे थे । उनकी बातचीत की कलकल सुनाई देती थी । लोगों की मानो एक लहर सी उमड़ी आ रही थी । छोटी-छोटी टोलियों में लोग फिर रहे थे, इकट्ठे हो रहे थे । बहुत से मनुष्य आपस में आख्यान कर रहे थे, अभिभाषण कर रहे थे, प्रज्ञापित कर रहे थे, प्ररूपित कर रहे थे–देवानुप्रियो ! आदिकर, तीर्थंकर, स्वयं संबुद्ध, पुरुषोत्तम, सिद्धि-गतिरूप स्थान की प्राप्ति हेतु समुद्यत भगवान महावीर, यथाक्रम विहार करते हुए, ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए यहाँ आए हैं, समवसृत हुए हैं । यहीं चम्पा नगरी के बाहर यथोचित स्थान ग्रहण कर संयम और तप से आत्मा को अनुभावित करते हुए बिराजित हैं । हम लोगों के लिए यह बहुत ही लाभप्रद है । देवानुप्रियो ! ऐसे अर्हत भगवान के नाम-गोत्र का सूनना भी बहुत बड़ी बात है, फिर अभिगमन, वन्दन, नमन, प्रतिपृच्छा, पर्युपासना करना–सान्निध्य प्राप्त करना–इनका तो कहना ही क्या ! सद्गुणनिष्पन्न, सद्धर्ममय एक सुवचन का श्रवण भी बहुत बड़ी बात है; फिर विपुल अर्थ के ग्रहण की तो बात ही क्या ! अतः देवानुप्रियो ! अच्छा हो, हम जाएं और श्रमण भगवान महावीर को वन्दन करें, नमन करें, उनका सत्कार करें, सम्मान करें । भगवान कल्याण हैं, मंगल हैं, देव हैं, तीर्थस्वरूप हैं । उनकी पर्युपासना करें । यह इस भव में, परभव में हमारे लिए हितप्रद सुखप्रद, क्षान्तिप्रद तथा निश्रेयसप्रद सिद्ध होगा ।

यों चिन्तन करते हुए बहुत से उग्रों, उग्रपुत्रों, भोगों, भोगपुत्रों, राजन्यों, क्षत्रियों, ब्राह्मणों, सुभटों, योद्धाओं, प्रशास्ताओं, मल्लकियों, लिच्छिवियों तथा अन्य अनेक राजाओं, ईश्वरों, तलवरों, माडंबिकों, कौटुम्बिकों, इभ्यों, श्रेष्ठियों, सेनापतियों एवं सार्थवाहों, इन सबके पुत्रों में से अनेक वन्दन हेतु, पूजन हेतु, सत्कार हेतु, सम्मान हेतु, दर्शन हेतु, उत्सुकता-पूर्ति हेतु, अर्थविनिश्चय हेतु, अश्रुत, श्रुत, अनेक इस भाव से, अनेक यह सोचकर कि युक्ति, तर्क तथा विश्लेषणपूर्वक तत्त्व-जिज्ञासा करेंगे, अनेक यह चिन्तन कर कि सभी सांसारिक सम्बन्धों का परिवर्जन कर, मुण्डित होकर अगार-धर्म से आगे बढ़ अनगार-धर्म स्वीकार करेंगे, अनेक यह सोचकर कि पाँच अणुव्रत, सात शिक्षा व्रत–यों बारह व्रतयुक्त श्रावक धर्म स्वीकार करेंगे, अनेक भक्ति-अनुराग के कारण, अनेक यह सोचकर कि यह अपना वंश-परंपरागत व्यवहार है, भगवान की सन्निधिमें आने को उद्यत हुए

उन्होंने स्नान किया, नित्य कार्य किये, कौतुक, ललाट पर तिलक किया; प्रायश्चित्त, मंगलविधान किया, गले में मालाएं धारण की, रत्नजड़े स्वर्णाभरण, हार, अर्धहार, तीन लड़ों के हार, लम्बे हार, लटकती हुई करधनियाँ आदि शोभावर्धक अलंकारों से अपने को सजाया, श्रेष्ठ, उत्तम वस्त्र पहने । उन्होंने समुच्चय रूप में शरीर पर चन्दन का लेप किया । उनमें से कईं घोड़ों पर, कईं हाथियों पर, कईं शिबिकाओं पर, कईं पुरुषप्रमाण पालखियों पर सवार हुए । अनेक व्यक्ति बहुत पुरुषों द्वारा चारों ओर से घिरे हुए पैदल चल पड़े । वे उत्कृष्ट, हर्षोन्नत, सुन्दर, मधुर घोष द्वारा नगरी को लहराते, गरजते विशाल समुद्रसदृश बनाते हुए उसके बीच से गुजरे । वैसा कर, जहाँ पूर्णभद्र चैत्य था, वहाँ आए । आकर न अधिक दूर से, न अधिक निकट से भगवान के तीर्थंकर-रूप के वैशिष्ट्यद्योतक छत्र आदि अतिशय देखी । देखते ही अपने यान, वाहन, वहाँ ठहराये । यान, रथ आदि वाहन–घोड़े, हाथी आदि से नीचे ऊतरे । जहाँ श्रमण भगवान महावीर थे, वहाँ आकर श्रमण भगवान महावीर की तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिणा की; वन्दन-नमस्कार किया । भगवान के न अधिक दूर, न अधिक निकट स्थित हो, उनके वचन सूनने की उत्कण्ठा लिए, नमस्कार-मुद्रा में भगवान महावीर के सामने विनयपूर्वक अंजलि बाँधे पर्युपासना करने लगे ।

सूत्र - २८

प्रवृत्ति-निवेदक को जब यह बात मालूम हुई, वह हर्षित एवं परितुष्ट हुआ । उसने स्नान किया, यावत् संख्या में कम पर बहुमूल्य आभूषणों से शरीर को अलंकृत किया । अपने घर से नीकला । नीकलकर वह चम्पा नगरी के बीच, जहाँ राजा कूणिक का महल था, जहाँ बहिर्वर्त्ती राजसभा-भवन था वहाँ आया । राजा सिंहासन पर बैठा । साढ़े बारह लाख रजत-मुद्राएं वार्ता-निवेदक को प्रीतिदान के रूप में प्रदान की । उत्तम वस्त्र आदि द्वारा उसका सत्कार किया, आदरपूर्ण वचनों से सम्मान किया । यों सत्कृत, सम्मानित कर उसे बिदा किया ।

सूत्र - २९

तब भंभसार के पुत्र राजा कूणिक ने बलव्यापृत को बुलाकर उससे कहा–देवानुप्रिय ! आभिषेक्य, प्रधान पद पर अधिष्ठित हस्ति-रत्न को सुसज्ज कराओ । घोड़े, हाथी, रथ तथा श्रेष्ठ योद्धाओं से परिगठित चतुरंगिणी सेना को तैयार करो । सुभद्रा आदि देवियों के लिए, उनमें से प्रत्येक के लिए यात्राभिमुख, जोते हुए यानों को बाहरी सभाभवन के निकट उपस्थापित करो । चम्पा नगरी के बाहर और भीतर, उसके संघाटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर, चतुर्मुख, राजमार्ग तथा सामान्य मार्ग, इन सबकी सफाई कराओ । वहाँ पानी का छिड़काव कराओ, गोबर आदि का लेप कराओ । नगरी के गलियों के मध्य-भागों तथा बाजार के रास्तों की भी सफाई कराओ, पानी का छिड़काव कराओ, उन्हें स्वच्छ व सुहावने कराओ । मंचातिमंच कराओ । तरह तरह के रंगों की, ऊंची, सिंह, चक्र आदि चिह्नों से युक्त ध्वजाएं, पताकाएं तथा अतिपताकाएं, जिनके परिपार्श्व अनेकानेक छोटी पताकाओं से सजे हों, ऐसी बड़ी पताकाएं लगवाओ । नगरी की दीवारों को लिपवाओ, पुतवाओ । यावत् जिससे सुगन्धित धूएं को प्रचुरता से वहाँ गोल-गोल धूममय छल्ले बनते दिखाई दें । इनमें जो करने का हो, उसे करके–कर्मकरों, सेवकों, श्रमिकों आदि को आदेश देकर, तत्सम्बन्धी व्यवस्था कर, उसे अपनी देखरेख में संपन्न करवा कर तथा जो दूसरों द्वारा करवाने का हो, उसे दूसरों से करवाकर मुझे सूचित करो कि आज्ञानुपालन हो गया है । यह सब हो जाने पर मैं भगवान के अभिवंदन हेतु जाऊं ।

सूत्र - ३०

राजा कूणिक द्वारा यों कहे जाने पर उस सेनानायक ने हर्ष एवं प्रसन्नतापूर्वक हाथ जोड़े, अंजलि को मस्तक से लगाया तथा विनयपूर्वक राजा का आदेश स्वीकार करते हुए निवेदन किया–महाराज की जैसी आज्ञा । सेनानायक ने यों राजाज्ञा स्वीकार कर हस्ति-व्यापृत को बुलाया । उससे कहा–देवानुप्रिय ! भंभसार के पुत्र महाराज कूणिक के लिए प्रधान, उत्तम हाथी सजाकर शीघ्र तैयार करो । घोड़े, हाथी, रथ तथा श्रेष्ठ योद्धाओं से परिगठित चतुरंगिणी सेना के तैयार होने की व्यवस्था कराओ । फिर मुझे आज्ञा-पालन हो जाने की सूचना करो ।

महावत ने सेनानायक का कथन सूना, उसका आदेश विनय-सहित स्वीकार किया । उस महावत ने, कलाचार्य से शिक्षा प्राप्त करने से जिसकी बुद्धि विविध कल्पनाओं तथा सर्जनाओं में अत्यन्त निपुण थी, उस उत्तम हाथी को उज्ज्वल नेपथ्य, वेषभूषा आदि द्वारा शीघ्र सजा दिया । उस सुसज्ज हाथी का धार्मिक उत्सव के अनुरूप शृंगार किया, कवच लगाया, कक्षा को उसके वक्षःस्थल से कसा, गले में हार तथा उत्तम आभूषण पहनाये, इस प्रकार उसे सुशोभित किया । वह बड़ा तेजोमय दीखने लगा । सुललित कर्णपूरों द्वारा उसे सुसज्जित किया । लटकते हुए लम्बे झूलों तथा मद की गंध से एकत्र हुए भौंरों के कारण वहाँ अंधकार जैसा प्रतीत होता था । झूल पर बेल बूँटे कढ़ा प्रच्छद वस्त्र डाला गया । शस्त्र तथा कवचयुक्त वह हाथी युद्धार्थ सज्जित जैसा प्रतीत होता था । उसके छत्र, ध्वजा, घंटा तथा पताका–ये सब यथास्थान योजित किये गये । मस्तक को पाँच कलंगियों से विभूषित कर उसे सुन्दर बनाया । उसके दोनों ओर दो घंटियाँ लटकाई । वह हाथी बिजली सहित काले बादल जैसा दिखाई देता था । वह अपने बड़े डीलडौल के कारण ऐसा लगता था, मानो अकस्मात् कोई चलता-फिरता पर्वत उत्पन्न हो गया हो । वह मदोन्मत्त था । बड़े मेघ की तरह वह गुलगुल शब्द द्वारा अपने स्वर में मानों गरजता था । उसकी गति मन तथा वायु के वेग को भी पराभूत करने वाली थी । विशाल देह तथा प्रचंड शक्ति के कारण वह भीम प्रतीत होता था । उस संग्राम योग्य आभिषेक्य हस्तिरत्न को महावत ने सन्नद्ध किया उसे तैयार कर घोड़े, हाथी, रथ तथा उत्तम योद्धाओं से परिगठित सेना को तैयार कराया । फिर वह महावत, जहाँ सेनानायक था, वहाँ आया और आज्ञा-पालन किये जा चूकने की सूचना दी ।

तदनन्तर सेनानायक ने यानशालिक को बुलाया । उससे कहा–सुभद्रा आदि रानियों के लिए, उनमें से प्रत्येक के लिए यात्राभिमुख, जुते हुए यान बाहरी सभा-भवन के निकट उपस्थित करो । हाजिर कर आज्ञा-पालन किये जा चूकने की सूचना दो । यानशालिक ने सेनानायक का आदेश विनयपूर्वक स्वीकार किया । वह, जहाँ यानशाला थी, वहाँ आया । यानों का निरीक्षण किया । उनका प्रमार्जन किया । उन्हें वहाँ से हटाया । बाहर नीकाला । उन पर लगी खोलियाँ दूर की । यानों को सजाया । उन्हें उत्तम आभरणों से विभूषित किया । वह जहाँ वाहनशाला थी, आया । वाहनशाला में प्रविष्ट हुआ । वाहनों का निरीक्षण किया । उन्हें संप्रमार्जित किया–वाहन-शाला से बाहर नीकाला । उनकी पीठ थपथपाई । उन पर लगे आच्छादक वस्त्र हटाये । वाहनों को सजाया । उत्तम आभरणों से विभूषित किया । उन्हें यानों में जोता । प्रतोत्रयष्टिकाएं, तथा प्रतोत्रधर को प्रस्थापित किया–उन्हें यष्टिकाएं देकर यान-चालन का कार्य सौंपा । यानों को राजमार्ग पकड़वाया । वह, जहाँ सेनानायक था, वहाँ आया। आकर सेनानायक को आज्ञा-पालन किये जा चूकने की सूचना दी ।

फिर सेनानायक ने नगरगुप्तिक नगररक्षक को बुलाकर कहा–देवानुप्रिय ! चम्पा नगरी के बाहर और भीतर, उसके संघाटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर, चतुर्मुख, राजमार्ग–इन सबकी सफाई कराओ । वहाँ पानी का छिड़काव कराओ, गोबर आदि का लेप कराओ यावत् नगरी के वातावरण को उत्कृष्ट सौरभमय करवा दो । यह सब करवाकर मुझे सूचित करो कि आज्ञा का अनुपालन हो गया है । नगरपाल ने सेनानायक का आदेश विनय-पूर्वक स्वीकार किया । चम्पानगरी की बाहर से, भीतर से सफाई, पानी का छिड़काव आदि करवाकर, वह जहाँ सेनानायक था, वहाँ आकर आज्ञापालन किये जा चूकने की सूचना दी ।

तदनन्तर सेनानायक ने भंभसार के पुत्र राजा कूणिक के प्रधान हाथी को सजा हुआ देखा । चतुरंगिणी सेना को सन्नद्ध देखा । सुभद्रा आदि रानियों के उपस्थापित यान देखे । चम्पानगरी की भीतर और बाहर से सफाई देखी । वह सुगंध से महक रही है । यह सब देखकर वह मन में हर्षित, परितुष्ट, आनन्दित एवं प्रसन्न हुआ ।

भंभसार का पुत्र राजा कूणिक जहाँ था, वह वहाँ आया । आकर हाथ जोड़े, राजा से निवेदन किया–देवानुप्रिय ! आभिषेक्य हस्तिरत्न तैयार है, घोड़े हाथी, रथ, उत्तम योद्धाओं से परिगठित चतुरंगिणी सेना सन्नद्ध है । सुभद्रा आदि रानियों के लिए, प्रत्येक के लिए अलग-अलग जुते हुए यात्राभिमुख यान बाहरी सभा-भवन के निकट उपस्थापित हैं । चम्पानगरी की भीतर और बाहर से सफाई करवा दी गई है, पानी का छिड़काव करवा दिया गया है, वह सुगंध से महक रही है । देवानुप्रिय ! श्रमण भगवान महावीर के अभिवन्दन हेतु आप पधारें ।

सूत्र - ३१

भंभसार के पुत्र राजा कूणिक ने सेनानायक से यह सूना । वह प्रसन्न एवं परितुष्ट हुआ । जहाँ व्यायाम-शाला थी, वहाँ आया । व्यायामशाला में प्रवेश किया । अनेक प्रकार से व्यायाम किया । अंगों को खींचना, उछलना -कूदना, अंगों को मोड़ना, कुश्ती लड़ना, व्यायाम के उपकरण आदि घुमाना–इत्यादि द्वारा अपने को श्रान्त, परि-श्रान्त किया, फिर प्रीणनीय रस, रक्त आदि धातुओं में समता-निष्पादक, दर्पणीय, मदनीय, बृंहणीय, आह्लाद-जनक, शतपाक, सहस्रपाक सुगंधित तैलों, अभ्यंगों आदि द्वारा शरीर को मसलवाया । फिर तैलचर्म पर, तैल मालिश किये हुए पुरुष को जिस पर बिठाकर संवाहन किया जाता है, देहचंपी की जाती है, स्थित होकर ऐसे पुरुषों द्वारा, जिनके हाथों और पैरों के तलुए अत्यन्त सुकुमार तथा कोमल थे, जो छेक, कलाविद, दक्ष, प्राप्तार्थ, कुशल, मेधावी, संवाहन-कला में निपुण, अभ्यंगन, उबटन आदि के मर्दन, परिमर्दन, उद्धलन, हड्डियों के लिए सुखप्रद, माँस के लिए सुखप्रद, चमड़ी के लिए सुखप्रद तथा रोओं के लिए सुखप्रद–यों चार प्रकार से मालिश व देहचंपी करवाई, शरीर को दबवाया ।

इस प्रकार थकावट, व्यायामजनित परिश्रान्ति दूर कर राजा व्यायामशाला से बाहर नीकला । जहाँ स्नान-घर था, वहाँ आया । स्नानघर में प्रविष्ट हुआ । वह मोतियों से बनी जालियों द्वारा सुन्दर लगता था । उसका प्रांगण तरह-तरह की मणि, रत्नों से खचित था । उसमें रमणीय स्नान-मंडप था । उसकी भीतों पर अनेक प्रकार की मणियों तथा रत्नों को चित्रात्मक रूप में जड़ा गया था । ऐसे स्नानघर में प्रविष्ट होकर राजा वहाँ स्नान हेतु अव-स्थापित चौकी पर सुखपूर्वक बैठा । शुद्ध, चन्दन आदि सुगन्धित पदार्थों के रस से मिश्रित, पुष्परस-मिश्रित सुखप्रद–न ज्यादा उष्ण, न ज्यादा शीतल जल से आनन्दप्रद, अतीव उत्तम स्नान-विधि द्वारा पुनः पुनः–अच्छी तरह स्नान किया । स्नान के अनन्तर राजा ने दृष्टिदोष, नजर आदि के निवारण हेतु रक्षाबन्धन आदि के रूप में अनेक, सैकड़ों विधि-विधान संपादित किए । तत्पश्चात् रोएंदार, सुकोमल, काषायित वस्त्र से शरीर को पोंछा । सरस, सुगन्धित गोरोचन तथा चन्दन का देह पर लेप किया । अदूषित, चूहों आदि द्वारा नहीं कतरे हुए, निर्मल, दूष्यरत्न भली भाँति पहने । पवित्र माला धारण की । केसर आदि का विलेपन किया । मणियों से जड़े सोने के आभूषण पहने । हार, अर्धहार तथा तीन लड़ों के हार और लम्बे, लटकते कटिसूत्र से अपने को सुशोभित किया । गले के आभरण धारण किए । अंगुलियों में अंगुठियाँ पहनीं । इस प्रकार अपने सुन्दर अंगों को सुन्दर आभूषणों से विभूषित किया । उत्तम कंकणों तथा त्रुटितों–भुजबंधों द्वारा भुजाओं को स्तम्भित किया । यों राजा की शोभा अधक बढ़ गई । मुद्रिकाओं के कारण राजा की अंगुठियाँ पीली लग रही थी । कुंडलों से मुख उद्योतित था । मुकूट से मस्तक दीप्त था ।

हारों से ढका हुआ उसका वक्षःस्थल सुन्दर प्रतीत हो रहा था । राजा ने एक लम्बे, लटकते हुए वस्त्र को उत्तरीय के रूप में धारण किया । सुयोग्य शिल्पियों द्वारा मणि, स्वर्ण, रत्न–इनके योग से सुरचित विमल, महार्ह, सुश्लिष्ट, विशिष्ट, प्रशस्त, वीरवलय धारण किया । अधिक क्या कहें, इस प्रकार अलंकृत, विभूषित, विशिष्ट सज्जायुक्त राजा ऐसा लगता था, मानों कल्पवृक्ष हो । अपने ऊपर लगाये गये कोरंट पुष्पों की मालाओं से युक्त छत्र, दोनों ओर डुलाये जाते चार चंवर, देखते ही लोगों द्वारा किये गये मंगलमय जय शब्द के साथ राजा स्नान-गृह से बाहर नीकला । अनेक गणनायक, दण्डनायक, राजा, ईश्वर, तलवर, माडंबिक, कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सेनापति, सार्थवाह, दूत, सन्धिपाल, इन सबसे घिरा हुआ वह राजा धवल महामेघ विशाल बादल से नीकले नक्षत्रों, आकाश को देदीप्यमान करते तारों के मध्यवर्ती चन्द्र के सदृश देखने में बड़ा प्रिय लगता था । वह, जहाँ बाहरी सभा-भवन था, प्रधान हाथी था, वहाँ आया । वहाँ आकर अंजनगिरि के शिखर के समान विशाल, उच्च

गजपति पर वह नरपति आरूढ़ हुआ ।

तब भंभसार के पुत्र राजा कूणिक के प्रधान हाथी पर सवार हो जाने पर सबसे पहले स्वस्तिक, श्रीवत्स, नन्द्यावर्त, वर्द्धमानक, भद्रासन, कलश, मत्स्य तथा दर्पण–ये आठ मंगल क्रमशः चले । उसके बाद जल से परिपूर्ण कलश, झारियाँ, दिव्य छत्र, पताका, चंवर तथा दर्शन-रचित-राजा के दृष्टिपथ में अवस्थित, दर्शनीय, हवा से फहराती, उच्छित, मानो आकाश को छूती हुई सी विजय-वैजयन्ती-विजय-ध्वजा लिये राजपुरुष चले । तदनन्तर वैडूर्य से देदीप्यमान उज्ज्वल दंडयुक्त, लटकती हुई कोरंट पुरुषों की मालाओं से सुशोभित, चन्द्रमंडल के सदृश आभामय, समुर्च्छित, आतपत्र, छत्र, अति उत्तम सिंहासन, श्रेष्ठ मणि-रत्नों से विभूषित, जिस पर राजा की पादुकाओं की जोड़ी रखी थी, वह पादपीठ, चौकी, जो किङ्करों, विभिन्न कार्यों में नियुक्त भृत्यों तथा पदातियों से घिरे हुए थे, क्रमशः आगे रवाना हुए ।

बहुत से लष्टिग्राह, कुन्तग्राह, चाचग्राह, चमरग्राह, पाशग्राह, पुस्तकग्राह, फलकग्राह, पीठग्राह, वीणाग्राह, कूप्यग्राह, हडप्पयग्राह, यथाक्रम आगे रवाना हुए । उसके बाद बहुत से दण्डी, मुण्डी, शिखण्डी, जटी, पिच्छी, हासकर, विदूषक, डमरकर, चाटुकर, वादकर, कन्दर्पकर, दवकर, कौत्कुचिक, क्रीड़ाकर, इनमें से कतिपय बजाते हुए, गाते हुए, हँसते हुए, नाचते हुए, बोलते हुए, सूनाते हुए, रक्षा करते हुए, अवलोकन करते हुए, तथा जय शब्द का प्रयोग करते हुए–यथाक्रम आगे बढ़े । तदनन्तर जात्य, एक सौ आठ घोड़े यथाक्रम रवाना किये गये । वे वेग, शक्ति और स्फूर्तिमय वय में स्थित थे । हरिमेला नामक वृक्ष की कली तथा मल्लिका जैसी उनकी आँखें थीं । तोते की चोंच की तरह वक्र पैर उठाकर वे शान से चल रहे थे । वे चपल, चंचल चाल लिये हुए थे । गड्डे आदि लांघना, ऊंचा कूदना, तेजी से सीधा दौड़ना, चतुराई से दौड़ना, भूमि पर तीन पैर टिकाना, जयिनी संज्ञक सर्वातिशयिनी तेज गति से दौड़ना, चलना इत्यादि विशिष्ट गतिक्रम वे सीखे हुए थे । उनके गले में पहने हुए, श्रेष्ठ आभूषण लटक रहे थे । मुख के आभूषण अवचूलक, दर्पण की आकृतियुक्त विशेष अलंकार, अभिलान बड़े सुन्दर दिखाई देते थे । उनके कटिभाग चामर-दंड़ से सुशोभित थे । सुन्दर, तरुण सेवक उन्हें थामे हुए थे ।

तत्पश्चात् यथाक्रम एक सौ आठ हाथी रवाना किये गये । वे कुछ कुछ मत्त–एवं उन्नत थे । उनके दाँत कुछ कुछ बाहर नीकले हुए थे । दाँतों के पीछले भाग कुछ विशाल थे, धवल थे । उन पर सोने के खोल चढ़े थे । वे हाथी स्वर्ण, मणि तथा रत्नों से शोभित थे । उत्तम, सुयोग्य महावत उन्हें चला रहे थे । उसके बाद एक सौ आठ रथ यथाक्रम रवाना किये गये । वे छत्र, ध्वज, पताका, घण्टे, सुन्दर तोरण, नन्दिघोष से युक्त थे । छोटी छोटी घंटियों से युक्त जाल उन पर फैलाये हुए थे । हिमालय पर्वत पर उत्पन्न तिनिश का काठ, जो स्वर्ण-खचित था, उन रथों में लगा था । रथों के पहियों के घेरों पर लोहे के पट्टे चढ़ाये हुए थे । पहियों की धुराएं गोल थी, सुन्दर, सुदृढ़ बनी थीं । उनमें छंटे हुए, उत्तम श्रेणी के घोड़े जुते थे । सुयोग्य, सुशिक्षित सारथियों ने उनकी बागडोर सम्हाल रखी थी । वे बत्तीस तरकशों से सुशोभित थे । कवच, शिरस्राण, धनुष, बाण तथा अन्यान्य शस्त्र रखे थे । इस प्रकार वे युद्ध-सामग्री से सुसज्जित थे । तदनन्तर हाथों में तलवारें, शक्तियाँ, कुन्त, तोमर, शूल, लट्ठियाँ, भिन्दिमाल तथा धनुष धारण किये हुए सैनिक क्रमशः रवाना हुए ।

तब नरसिंह, नरपति, परिपालक, नरेन्द्र, परम ऐश्वर्यशाली अधिपति, नरवृषभ, मनुजराजवृषभ, उत्तर भारत के आधे भाग को साधने में संप्रवृत्त, भंभसारपुत्र राजा कूणिक ने जहाँ पूर्णभद्र चैत्य था, वहाँ जाने का विचार किया, प्रस्थान किया । अश्व, हस्ती, रथ एवं पैदल–इस प्रकार चतुरंगिणी सेना उसके पीछे-पीछे चल रही थी। राजा का वक्षःस्थल हारों से व्याप्त, सुशोभित तथा प्रीतिकार था । उसका मुख कुण्डलों से उद्योतित था । मस्तक मुकूट से देदीप्यमान था । राजोचित तेजस्वितारूप लक्ष्मी से वह अत्यन्त दीप्तिमय था । वह उत्तम हाथी पर आरूढ़ हुआ । कोरंट के पुष्पों की मालाओं से युक्त छत्र उस पर तना था । श्रेष्ठ, श्वेत चंवर डुलाये जा रहे थे । वैश्रमण, नरपति, अमरपति के तुल्य उसकी समृद्धि सुप्रशस्त थी, जिससे उसकी कीर्ति विश्रुत थी ।

भंभसार के पुत्र राजा कूणिक के आगे बड़े बड़े घोड़े और घुड़सवार थे । दोनों ओर हाथी तथा हाथियों पर सवार पुरुष थे । पीछे रथ-समुदाय था । तदनन्तर भंभसार का पुत्र राजा कूणिक चम्पा नगरी के बीचोंबीच होता हुआ आगे बढ़ा । उसके आगे आगे जल से भरी झारियाँ लिये पुरुष चल रहे थे । सेवक दोनों ओर पंखे झल रहे थे।

ऊपर सफेद छत्र तना था । चंवर ढोले जा रहे थे । वह सब प्रकार की समृद्धि, सब प्रकार की द्युति, सब प्रकार के सैन्य, सभी परिजन, समादरपूर्ण प्रयत्न, सर्व विभूति, सर्वविभूषा, सर्वसम्भ्रम, सर्व-पुष्प गन्धमाल्यालंकार, सर्व तूर्य शब्द सन्निपात, महाऋद्धि, महाद्युति, महाबल, अपने विशिष्ट पारिवारिक जन-समुदाय से सुशोभित था तथा शंख, पणव, पटह, छोटे ढोल, भेरी, झालर, खरमुही, हुडुक्क, मुरज, मृदंग तथा दुन्दुभि एक साथ विशेष रूप से बजाए जा रहे थे ।

सूत्र - ३२

जब राजा कूणिक चम्पा नगरी के बीच से गुजर रहा था, बहुत से अभ्यर्थी, कामार्थी, भोगार्थी, लाभार्थी, किल्बिषिक, कापालिक, करबाधित, शांखिक, चाक्रिक, लांगलिक, मुखमांगलिक, वर्धमान, पूष्यमानव, खंडिक-गण, इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ, मनाम, मनोभिराम, हृदय में आनन्द उत्पन्न करने वाली वाणी से एवं जय विजय आदि सैकड़ों मांगलिक शब्दों से राजा का अनवरत अभिनन्दन करते हुए, अभिस्तवन करते हुए इस प्रकार बोले–जन-जन को आनन्द देने वाले राजन् ! आपकी जय हो, आपकी जय हो । जन-जन के लिए कल्याण-स्वरूप राजन् ! आप सदा जयशील हो । आपका कल्याण हो । जिन्हें नहीं जीता है, उन पर आप विजय प्राप्त करें । जिनको जीत लिया है उनका पालन करें । उनके बीच निवास करें । देवों में इन्द्र की तरह, असुरों में चमरेन्द्र की तरह, नागों में धरणेन्द्र की तरह, तारों में चन्द्रमा की तरह, मनुष्यों में चक्रवर्ती भरत की तरह आप अनेक वर्षों तक, अनेक शतवर्षों तक, अनेह सहस्रवर्षों तक, अनेक लक्ष वर्षों तक अनघसमग्र सर्वथा सम्पन्न, हृष्ट, तुष्ट रहें, उत्कृष्ट आयु प्राप्त करें । आप अपने प्रियजन सहित चम्पानगरीके तथा अन्य बहुत से ग्राम, आकर, नगर, खेट, कर्बट, द्रोण-मुख, मडंब, पत्तन, आश्रम, निगम, संवाह, सन्निवेश, इन सबका आधिपत्य, पौरोवृत्य, स्वामित्व, भर्तृत्व, महत्तरत्व, आज्ञेश्वरत्व-सेनापतित्व-इन सबका सर्वाधिकृत रूप में पालन करते हुए निर्बाध अविच्छिन्न रूप में नृत्य, गीत, वाद्य, वीणा, करताल, तूर्य एवं घनमृदंग के निपुणतापूर्ण प्रयोग द्वारा नीकलती सुन्दर ध्वनियों से आनन्दित होते हुए, विपुल अत्यधिक भोग भोगते हुए सुखी रहें, यों कहकर उन्होंने जय-घोष किया ।

भंभसार के पुत्र राजा कूणिक का सहस्रों नर-नारी अपने नेत्रों से बार-बार दर्शन कर रहे थे, हृदय से उसका बार-बार अभिनन्दन कर रहे थे, अपने शुभ मनोरथ लिये हुए थे, उसका बार-बार अभिस्तवन कर रहे थे, उसकी कान्ति, उत्तम सौभाग्य आदि गुणों के कारण–ये स्वामी हमें सदा प्राप्त रहें, बार-बार ऐसी अभिलाषा करते थे । नर-नारियों द्वारा अपने हजारों हाथों से उपस्थापित अंजलिमाला को अपना दाहिना हाथ ऊंचा उठाकर बार-बार स्वीकार करता हुआ, अत्यन्त कोमल वाणी से उनका कुशल पूछता हुआ, घरों की हजारों पंक्तियों को लांघता हुआ राजा कूणिक चम्पा नगरी के बीच से नीकला । जहाँ पूर्णभद्र चैत्य था, वहाँ आया । भगवान के न अधिक दूर न अधिक निकट रुका । तीर्थंकरों के छत्र आदि अतिशयों को देखा । देखकर अपनी सवारी के प्रमुख उत्तम हाथी को ठहराया, हाथी से नीचे उतरा, तलवार, छत्र, मुकूट, चंवर–इन राजचिह्नों को अलग किया, जूते उतारे । भगवान महावीर जहाँ थे, वहाँ आया । आकर, सचित्त का व्युत्सर्जन, अचित्त का अव्युत्सर्जन, अखण्ड वस्त्र का उत्तरासंग, दृष्टि पड़ते ही हाथ जोड़ना, मन को एकाग्र करना–इन पाँच नियमों के अनुपालनपूर्वक राजा कूणिक भगवान के सम्मुख आया । भगवान को तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिणा कर वन्दना की, नमस्कार किया । कायिक, वाचिक, मानसिक रूप से पर्युपासना की । कायिक पर्युपासना के रूप में हाथों-पैरों को संकुचित किये हुए शुश्रूषा करते हुए, नमन करते हुए भगवान की ओर मुँह किये, विनय से हाथ जोड़े हुए स्थित रहा । वाचिक पर्युपासना के रूप में–जो-जो भगवान बोलते थे, उसके लिए ''यह ऐसा ही है भन्ते ! यही तथ्य है भगवन् ! यही सत्य है प्रभो ! यही सन्देह-रहित है स्वामी ! यही ईच्छित है भन्ते ! यही प्रतीच्छित है, प्रभो ! यही ईच्छित-प्रतीच्छित है, भन्ते ! जैसा आप कह रहे हैं ।'' इस प्रकार अनुकूल वचन बोलता, मानसिक पर्युपासना के रूप में अपने में अत्यन्त संवेग उत्पन्न करता हुआ तीव्र धर्मानुराग से अनुरक्त रहा ।

सूत्र - ३३

तब सुभद्रा आदि रानियों ने अन्तःपुर में स्नान किया, नित्य कार्य किये । कौतुक की दृष्टि से आँखों में काजल आंजा, लालट पर तिलक लगाया, प्रायश्चित्त हेतु चन्दन, कुंकुम, दधि, अक्षत आदि से मंगल-विधान किया

। वे सभी अलंकारों से विभूषित हुईं । फिर बहुत सी देश-विदेश की दासियों, जिनमें से अनेक कुबड़ी थीं; अनेक किरात देश की थी, अनेक बौनी थीं, अनेक ऐसी थीं, जिनकी कमर झुकी थीं, अनेक बर्बर देश की, बकुश देश की, यूनान देश की, पह्लव देश की, इसिन देश की, चारुकिनिक देश की, लासक देश की, लकुश देश की, सिंहल देश की, द्रविड़ देश की, अरब देश की, पुलिन्द देश की, पक्कण देश की, बहल देश की, मुरुंड देश की, शबर देश की, पारस देश की–यों विभिन्न देशों की थीं जो स्वदेशी वेशभूषा से सज्जित थीं, जो चिन्तित और अभिलषित भाव को संकेत या चेष्टा मात्र से समझ लेने में विज्ञ थीं, अपने अपने देश के रीति-रिवाज के अनुरूप जिन्होंने वस्त्र आदि धारण कर रखे थे, ऐसी दासियों के समूह से घिरी हुई, वर्षधरों, कंचुकियों तथा अन्तःपुर के प्रामाणिक रक्षाधिकारियों से घिरी हुई बाहर नीकलीं ।अन्तःपुर से नीकल कर सुभद्रा आदि रानियाँ, जहाँ उनके लिए अलग-अलग रथ खड़े थे, वहाँ आई । अपने अलग-अलग अवस्थित यात्राभिमुख, जुते हुए रथों पर सवार हुईं ।

अपने परिजन वर्ग आदि से घिरी हुई चम्पानगरी के बीच से नीकलीं । जहाँ पूर्णभद्र चैत्य था, वहाँ आईं । श्रमण भगवान महावीर के न अधिक दूर, न अधिक निकट ठहरीं । तीर्थंकरों के छत्र आदि अतिशयों को देखा । देखकर अपने अपने रथों को रुकवाया । रथों से नीचे उतरीं । अपनी बहुत सी कुब्जा आदि पूर्वोक्त दासियों से घिरी हुई बाहर नीकलीं । जहाँ श्रमण भगवान महावीर थे, वहाँ आई । भगवान के निकट जाने हेतु पाँच प्रकार के अभिगमन जैसे सचित्त पदार्थों का व्युत्सर्जन करना, अचित्त पदार्थों का अव्युत्सर्जन, देह को विनय से नम्र करना, भगवान की दृष्टि पड़ते ही हाथ जोड़ना तथा मन को एकाग्र करना । फिर उन्होंने तीन बार भगवान महावीर को आदक्षिण-प्रदक्षिणा दी । वैसा कर वन्दन-नमस्कार किया । वे अपने पति महाराज कूणिक को आगे कर अपने परिजनों सहित भगवान के सन्मुख विनय-पूर्वक हाथ जोड़े पर्युपासना करने लगीं ।

सूत्र - ३४

तत्पश्चात् श्रमण भगवान महावीर ने भंभसारपुत्र राजा कूणिक, सुभद्रा आदि रानियों तथा महती परिषद् को धर्मोपदेश किया । भगवान महावीर की धर्मदेशना सूनने को उपस्थित परिषद् में, अतिशय ज्ञानी साधु, मुनि, यति, देवगण तथा सैकड़ों-सैकड़ों श्रोताओं के समूह उपस्थित थे । ओघबली, अतिबली, महाबली, अपरिमित बल, तेज, महत्ता तथा कांतियुक्त, शरत् काल के नूतन मेघ के गर्जन, क्रौंच पक्षी के निर्घोष तथा नगारे की ध्वनि समान मधुर गंभीर स्वरयुक्त भगवान महावीर ने हृदय में विस्तृत होती हुई, कंठ में अवस्थित होती हुई तथा मूर्धा में परिव्याप्त होती हुई सुविभक्त अक्षरों को लिए हुए, अस्पष्ट उच्चारणवर्जित या हकलाहट से रहित, सुव्यक्त अक्षर वर्णों की व्यवस्थित श्रृंखला लिए हुए, पूर्णता तथा स्वरमाधुरी युक्त, श्रोताओं की सभी भाषाओं में परिणत होने वाली, एक योजन तक पहुँचने वाले स्वर में, अर्द्धमागधी भाषा में धर्म का परिकथन किया । उपस्थित सभी आर्य-अनार्य जनों को अग्लान भाव से धर्म का व्याख्यान किया । भगवान द्वारा उद्गीर्ण अर्द्ध मागधी भाषा उन सभी आर्यों और अनार्यों की भाषाओं में परिणत हो गईं ।

भगवान ने जो धर्मदेशना दी, वह इस प्रकार है–लोक का अस्तित्व है, अलोक का अस्तित्व है । इसी प्रकार जीव, अजीव, बन्ध, मोक्ष, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, वेदना, निर्जरा, अर्हत्, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, नरक, नैरयिक, तिर्यंचयोनि, तिर्यचयोनिक जीव, माता, पिता, ऋषि, देव, देवलोक, सिद्धि, सिद्ध, परिनिर्वाण, परिनिर्वृत्त का अस्तित्व है । प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह हैं । क्रोध, मान, माया, लोभ यावत् मिथ्यादर्शनशल्य है। प्राणातिपातविरमण, मृषावादविरमण, अदत्तादानविरमण, मैथुनविरमण, परिग्रहविरमण,क्रोध से, यावत् मिथ्यादर्शनशल्यविवेक होना और त्यागना यह सब है–सभी अस्तिभाव हैं। सभी नास्तिभाव हैं। सुचीर्ण, रूपमें संपादित दान, शील, तप आदि कर्म उत्तम फल देनेवाले हैं तथा दुश्चीर्ण दुःखमय फल देनेवाले हैं । जीव पुण्य तथा पाप का स्पर्श करता है, बन्ध करता है । जीव उत्पन्न होते हैं–शुभ कर्म अशुभ कर्म फल युक्त हैं, निष्फल नहीं होते । प्रकारान्तर से भगवान धर्म का आख्यान करते हैं–

यह निर्ग्रन्थप्रवचन, जिनशासन अथवा प्राणी की अन्त-र्वर्ती ग्रन्थियों को छुड़ाने वाला आत्मानुशासनमय उपदेश सत्य है, अनुत्तर है, केवल है, संशुद्ध है, प्रतिपूर्ण है, नैयायिक है–प्रमाण से अबाधित है तथा शल्य-कर्तन है, यह सिद्धि मार्ग है, मुक्ति हेतु है, निर्वाण पथ है, निर्याण-मार्ग है, अवितथ, अविसन्धि का मार्ग है । इसमें स्थित

जीव सिद्धि प्राप्त करते हैं, बुद्ध होते हैं, मुक्त हो जाते हैं, परिनिर्वृत्त होते हैं तथा सभी दुःखों का अन्त कर देते हैं । एकार्च्चा, ऐसे भदन्त हैं । वे देवलोक महर्द्धिक (अत्यन्त द्युति, बल तथा यशोमय), अत्यन्त सुखमय दूरंगतिक हैं । वहाँ देवरूप में उत्पन्न वे जीव अत्यन्त ऋद्धिसम्पन्न तथा चिरस्थितिक है। उनके वक्षःस्थल हारों से सुशोभित होते हैं । वे कल्पोपग देवलोक में देव-शय्या से युवा रूप में उत्पन्न होते हैं । वे वर्तमान में उत्तम देवगति के धारक तथा भविष्य में भद्र अवस्था को प्राप्त करने वाले हैं । असाधारण रूपवान् होते हैं । भगवान ने आगे कहा–जीव चार स्थानों से–नैरयिक का आयुष्यबन्ध करते हैं, फलतः वे विभिन्न नरकों में उत्पन्न होते हैं । वे स्थान इस प्रकार हैं–१. महाआरम्भ, २. महापरिग्रह, ३. पंचेन्द्रिय-वध, ४. मांस-भक्षण । इन कारणों से जीव तिर्यंच-योनि में उत्पन्न होते हैं–१. मायापूर्ण निकृति, २. अलीक वचन, ३. उत्कंचनता, ४. वंचनता । इन कारणों से जीव मनुष्ययोनिमें उत्पन्न होते हैं–१. प्रकृति-भद्रता , २. प्रकृति-विनीतता, ३. सानुक्रोशता, ४. अमत्सरता । इन कारणों से जीव देवयोनि में उत्पन्न होते हैं–१. सरागसंयम, २. संयमासंयम, ३. अकाम-निर्जरा, ४. बाल-तप–तत्पश्चात् भगवान ने बतलाया–

सूत्र – ३५, ३६

जो नरक में जाते हैं, वे वहाँ नैरयिकों जैसी वेदना पाते हैं । तिर्यंच योनि में गये हुए वहाँ होने वाले शारीरिक और मानसिक दुःख प्राप्त करते हैं ।मनुष्यजीवन अनित्य है । उसमें व्याधि, वृद्धावस्था, मृत्यु और वेदना आदि प्रचुर कष्ट हैं । देवलोक में देव दैवीऋद्धि और दैवीसुख प्राप्त करते हैं ।

सूत्र – ३७-४०

भगवान ने नरक तिर्यंचयोनि, मानुषभाव, देवलोक तथा सिद्ध, सिद्धावस्था एवं छह जीवनिकाय का विवेचन किया । जैसे–जीव बंधते हैं, मुक्त होते हैं, परिक्लेश पाते हैं । कईं अप्रतिबद्ध व्यक्ति दुःखों का अन्त करते हैं । पीड़ा वेदना या आकुलतापूर्ण चित्तयुक्त जीव दुःख-सागर को प्राप्त करते हैं, वैराग्य प्राप्त जीव कर्म-बल को ध्वस्त करते हैं । रागपूर्वक किये गये कर्मों का फलविपाक पापपूर्ण होता है, कर्मों से सर्वथा रहित होकर जीव सिद्धावस्था प्राप्त करते हैं–यह सब (भगवान ने) आख्यात किया ।

आगे भगवान ने बतलाया–धर्म दो प्रकार का है–अगार-धर्म और अनगार-धर्म । अनगार-धर्म में साधक सर्वतः सर्वात्मना, सर्वात्मभाव से सावद्य कार्यों का परित्याग करता हुआ मुण्डित होकर, गृहवास से अनगार दशा में प्रव्रजित होता है । वह संपूर्णतः प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्ता-दान, मैथुन, परिग्रह तथा रात्रि-भोजन से विरत होता है । भगवान ने कहा–आयुष्मान् ! यह अनगारों के लिए समाचरणीय धर्म कहा गया है । इस धर्म की शिक्षा या आचरण में उपस्थित रहते हुए निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी साध्वी आज्ञा के आराधक होते हैं ।

भगवान ने अगारधर्म १२ प्रकार का बतलाया–५ अणुव्रत, ३ गुणव्रत तथा ४ शिक्षाव्रत । ५ अणुव्रत इस प्रकार हैं–१. स्थूल प्राणातिपात से निवृत्त होना, २. स्थूल मृषावाद से निवृत्त होना, ३. स्थूल अदत्तादन से निवृत्त होना, ४. स्वदारसंतोष मैथुन की सीमा, ५. परिग्रह की ईच्छा का परिमाण । ३ गुणव्रत इस प्रकार हैं–अनर्थदंड-विरमण, २. दिग्व्रत, ३. उपभोग-परिभोग-परिमाण । ४ शिक्षाव्रत इस प्रकार हैं–१. सामायिक, २. देशावकाशिक, ३. पोषधोपवास, ४. अतिथि-संविभाग। तितिक्षापूर्वक अन्तिम मरण रूप संलेखणा भगवान ने कहा–आयुष्यमान्! यह गृही साधकों का आचरणीय धर्म है । इस धर्म के अनुसरण में प्रयत्नशील होते हुए श्रमणोपासक-श्रावक या श्रमणोपासिका–श्राविका आज्ञा के आराधक होते हैं ।

सूत्र - ४१

तब वह विशाल मनुष्य-परिषद् श्रमण भगवान महावीर से धर्म सूनकर, हृदय में धारण कर, हृष्ट-तुष्ट हुई, चित्त में आनन्द एवं प्रीति का अनुभव किया, अत्यन्त सौम्य मानसिक भावों से युक्त तथा हर्षातिरेक से विकसित-हृदय होकर उठी । उठकर श्रमण भगवान महावीर को तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिणा, वंदन-नमस्कार किया, उनमें से कईं गृहस्थ-जीवन का परित्याग कर, मुण्डित होकर, अनगार या श्रमण के रूप में प्रव्रजित हुए । कइयों ने पाँच अणुव्रत तथा सात शिक्षाव्रत रूप बारह प्रकार का गृहीधर्म स्वीकार किया । शेष परिषद् ने भगवान महावीर को वंदन किया, नमस्कार किया–भगवन् ! आप द्वारा सुआख्यात, सुप्रज्ञप्त, सुभाषित, सुविनीत, सुभावित, निर्ग्रन्थ प्रवचन अनुत्तर है । आपने धर्म की व्याख्या करते हुए उपशम का विश्लेषण किया । उपशम की व्याख्या करते हुए

विवेक समझाया । विवेक की व्याख्या करते हुए आपने विरमण का निरूपण किया । विरमण की व्याख्या करते हुए आपने पापकर्म न करने की विवेचना की । दूसरा कोई श्रमण या ब्राह्मण नहीं है, जो ऐसे धर्म का उपदेश कर सके । इससे श्रेष्ठ धर्म की तो बात ही कहाँ ? यों कहकर वह परिषद् जिस दिशा से आई थी, उसी ओर लौट गई ।

सूत्र - ४२

तत्पश्चात् भंभसार का पुत्र राजा कूणिक श्रमण भगवान महावीर से धर्म का श्रवण कर हृष्ट, तुष्ट हुआ, मन में आनन्दित हुआ । अपने स्थान से उठा । श्रमण भगवान महावीर को तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिणा की । वन्दन-नमस्कार किया । बोला–भगवन् ! आप द्वारा सुआख्यात, सुप्रज्ञप्त, सुभाषित, सुविनीत, सुभावित, निर्ग्रन्थ प्रवचन अनुत्तर है । इससे श्रेष्ठ धर्म के उपदेश की तो बात ही कहाँ ? यों कह कर वह जिस दिशा से आया था, उसी दिशा में लौट गया ।

सूत्र - ४३

सुभद्रा आदि रानियाँ श्रमण भगवान महावीर से धर्म का श्रवण कर हृष्ट, तुष्ट हुई, मन में आनन्दित हुई । अपने स्थान से उठीं । उठकर श्रमण भगवान महावीर की तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिणा की । वैसा कर भगवान को वन्दन-नमस्कार किया । वन्दन-नमस्कार कर वे बोली–''निर्ग्रन्थ-प्रवचन सुआख्यात है...सर्वश्रेष्ठ है...इत्यादि पूर्व-वत् ।'' यों कहकर वे जिस दिशा से आई थीं, उसी दिशा की ओर चली गईं ।

मुनि दीपरत्नसागरकृत् ''समवसरण'' विषयक हिन्दी अनुवाद पूर्ण

सूत्र - ४४

उस काल, उस समय श्रमण भगवान महावीर के ज्येष्ठ अन्तेवासी गौतमगोत्रीय इन्द्रभूति नामक अनगार, जिनकी देह की ऊंचाई सात हाथ थी, जो समचतुरस्र-संस्थान संस्थित थे–जो वज्र-ऋषभ-नाराच-संहनन थे, कसौटी पर खचित स्वर्ण-रेखा की आभा लिए हुए कमल के समान जो गौर वर्ण थे, जो उग्र तपस्वी थे, दीप्त तपस्वी थे, तप्त तपस्वी, जो कठोर एवं विपुल तप करने वाले थे, जो उराल साधना में सशक्त घोरगुण धारक, घोर तपस्वी, घोर ब्रह्मचर्यवासी, उत्क्षिप्तशरीर थे, जो विशाल तेजोलेश्या अपने शरीर के भीतर समेटे हुए थे, भगवान महावीर से न अधिक दूर न अधक समीप पर संस्थित हो, घुटने ऊंचे किये, मस्तक नीचे किये, ध्यान की मुद्रा में, संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए अवस्थित थे ।

तब उन भगवान गौतम के मन में श्रद्धापूर्वक ईच्छा पैदा हुई, संशय–जिज्ञासा एवं कुतूहल पैदा हुआ । पुनः उनके मन में श्रद्धा का भाव उभरा, संशय उभरा, कुतूहल समुत्पन्न हुआ । उठकर जहाँ भगवान महावीर थे, आए । तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिणा की, वन्दना-नमस्कार किया । भगवान के न अधिक समीप न अधिक दूर सूनने की ईच्छा रखते हुए, प्रणाम करते हुए, विनयपूर्वक सामने हाथ जोड़े हुए, उनकी पर्युपासना– करते हुए बोले । भगवन्! वह जीव, जो असंयत है, जो अविरत है, जिसने प्रत्याख्यान द्वारा पाप-कर्मों को प्रतिहत नहीं किया, जो सक्रिय है, जो असंवृत है, जो एकान्तदंड युक्त है, जो एकान्तबाल हैं, जो एकान्तसुप्त है, क्या वह पाप-कर्म से लिप्त होता है–हाँ, गौतम ! होता है ।

भगवन् ! वह जीव, जो असंयत है, जो अविरत है, जिससे प्रत्याख्यान द्वारा पाप कर्मों को प्रतिहत नहीं किया, जो सक्रिय हैं, जो असंवृत हैं, जो एकान्तदंडयुक्त हैं, जो एकान्त-बाल हैं, जो एकान्त-सुप्त हैं, क्या वह मोहनीय पाप-कर्म से लिप्त होता है–मोहनीय पाप-कर्म का बंध करता है ? हाँ गौतम ! करता है । भगवन् ! क्या जीव मोहनीय कर्म का वेदन करता हुआ मोहनीय कर्म का बंध करता है ? क्या वेदनीय कर्म का बंध करता है ? गौतम ! वह मोहनीय कर्म का बंध करता है, वेदनीय कर्म का भी बंध करता है । किन्तु चरम मोहनीय कर्म का वेदन करता हुआ जीव वेदनीय कर्म का ही बंध करता है, मोहनीय का नहीं ।

भगवन् ! जो जीव असंयत है, अविरत है, जिसने सम्यक्त्वपूर्वक पापकर्मों को प्रतिहत नहीं किया है, जो सक्रिय है, असंवृत है, एकान्त दण्ड है, एकान्तबाल है तथा एकान्तसुप्त है, त्रस-द्वीन्द्रिय आदि स्पन्दनशील, हिलने

डुलनेवाले अथवा जिन्हें त्रास का वेदन करते हुए अनुभव किया जा सके, वैसे जीवों का प्रायः घात करता है–क्या वह मृत्यु-काल आने पर मरकर नैरयिकों में उत्पन्न होता है ? हाँ, गौतम ! ऐसा होता है । भगवन् ! जिन्होंने संयम नहीं साधा, जो अवरित हैं, जिन्होंने प्रत्याख्यान द्वारा पाप-कर्मों को प्रतिहत नहीं किया, वे यहाँ से च्युत होकर आगे के जन्म में क्या देव होते हैं ? गौतम ! कईं देव होते हैं, कईं देव नहीं होते हैं । भगवन् ! आप किस अभिप्राय से ऐसा कहते हैं कि कईं देव होते हैं, कईं देव नहीं होते ? गौतम ! जो जीव मोक्ष की अभिलाषा के बिना या कर्म-क्षय के लक्ष्य के बिना ग्राम, आकर, नगर, खेट, गाँव, कर्बट, द्रोणमुख, मडंब, पत्तन, आश्रम, निगम, संवाह, सन्निवेश में तृषा, क्षुधा, ब्रह्मचर्य, अस्नान, शीत, आतप, डांस, स्वेद, जल्ल, मल्ल, पंक इन परितापों से अपने आपको थोड़ा या अधिक क्लेश देते हैं, कुछ समय तक अपने आप को क्लेशित कर मृत्यु का समय आने पर देह का त्याग कर वे वानव्यन्तर देवलोकों में से किसी लोक में देव के रूप में पैदा होते हैं । वहाँ उनकी अपनी विशेष गति, स्थिति तथा उपपात होता है । भगवन् ! वहाँ उन देवों की स्थिति–आयु कितने समय की बतलाई गई है ? गौतम ! वहाँ उनकी स्थिति दस हजार वर्ष की बतलायी गई है । भगवन् ! क्या उन देवों की ऋद्धि, परिवार आदि संपत्ति, द्युति, यश–कीर्ति, बल, वीर्य, पुरुषकार, तथा पराक्रम–ये सब अपनी अपनी विशेषता के साथ होते हैं ? हाँ, गौतम ! ऐसा होता है । भगवन् ! क्या वे देव परलोक के आराधक होते हैं ? गौतम ! ऐसा नहीं होता ।

जो (ये) जीव ग्राम, आकर, नगर, खेट, कर्बट, द्रोणमुख, मडंब, पत्तन, आश्रम, निगम, संवाह, सन्निवेश, मनुष्य के रूप में जन्म लेते हैं, जिनके किसी अपराध के कारण काठ या लोहे के बंधन से हाथ पैर बाँध दिये जाते हैं, जो बेड़ियों से जकड़ दिये जाते हैं, जिनके पैर काठ के खोड़े में डाल दिये जाते हैं, जो कारागार में बंद कर दिये जाते हैं, जिनके हाथ, पैर, कान, नाक हैं, होठ, जिह्वाएं, मस्तक, मुँह, बायें कन्धे से लेकर दाहिनी काँख तक के देह-भाग मस्तक सहित विदीर्ण कर दिये जाते हैं, हृदय चीर दिये जाते हैं, आँखे नीकाल ली जाती हैं, दाँत तोड़ दिये जाते हैं, जिनके अंडकोष उखाड़ दिये जाते हैं, गर्दन तोड़ दी जाती है, चावलों की तरह जिनके शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर दिये जाते हैं, जिनके शरीर का कोमल मांस उखाड़ कर जिन्हें खिलाया जाता है, जो रस्सी से बाँध कर कुए खड्डे आदि में लटका दिये जाते हैं, वृक्ष की शाखा में हाथ बाँध कर लटका दिये जाते हैं, चन्दन की तरह पथ्थर आदि पर घिस दिये जाते हैं, पात्र-स्थित दहीं की तरह जो मथ दिये जाते हैं, काठ की तरह कुल्हाड़े से फाड़ दिये जाते हैं, जो गन्ने की तरह कोल्हू में पेल दिये जाते हैं, जो सूली में पिरो दिये जाते हैं, जो सूली से बींध दिये जाते हैं–जिनके देह से लेकर मस्तक में से सूली नीकाल दी जाती है, जो खार के बर्तन में डाल दिये जाते हैं, जो–गीले चमड़े से बाँध दिये जाते हैं, जिनके जननेन्द्रिय काट दिये जाते हैं, जो दवाग्नि में जल जाते हैं, कीचड़ में डूब जाते हैं ।

संयम से भ्रष्ट होकर या भूख आदि से पीड़ित होकर मरते हैं, जो विषय-परतन्त्रता से पीड़ित या दुःखित होकर मरते हैं, जो सांसारिक ईच्छा पूर्ति के संकल्प के साथ अज्ञानमय तपपूर्वक मरते हैं, जो अन्तःशल्य को नीकाले बिना या भाले आदि से अपने आपको बेधकर मरते हैं, जो पर्वत से गिरकर मरते हैं, जो वृक्ष से गिरकर, मरुस्थल या निर्जल प्रदेश में, जो पर्वत से झंपापात कर, वृक्ष से छलांग लगा कर, मरुभूमि की बालू में गिरकर, जल में प्रवेश कर, अग्नि में प्रवेश कर, जहर खाकर, शस्त्रों से अपने को विदीर्ण कर और वृक्ष की डाली आदि से लटक कर फाँसी लगाकर मरते हैं, जो मरे हुए मनुष्य, हाथी, ऊंट, गधे आदि की देह में प्रविष्ट होकर गीधों की चांचों से विदारित होकर मरते हैं, जो जंगल में खोकर मर जाते हैं, दुर्भिक्ष में भूख, प्यास आदि से मर जाते हैं, यदि उनके परिणाम संक्लिष्ट हों तो उस प्रकार मृत्यु प्राप्त कर वे वानव्यन्तर देवलोकों में से किसी में देवरूप में उत्पन्न होते हैं। वहाँ उस लोक के अनुरूप उनकी गति, स्थिति तथा उत्पत्ति होती है, ऐसा बतलाया गया है । भगवन् ! उन देवों की वहाँ कितनी स्थिति होती है ? गौतम ! वहाँ उनकी स्थिति बारह हजार वर्ष की होती है । भगवन् ! उन देवों के वहाँ ऋद्धि, द्युति, यश, बल, वीर्य तथा पुरुषकार-पराक्रम होता है या नहीं ? गौतम ! होता है। भगवन् ! क्या वे देव परलोक के आराधक होते हैं ? गौतम ! ऐसा नहीं होता ।

(वे) जो जीव ग्राम, आकर यावत् सन्निवेश में मनुष्यरूप में उत्पन्न होते हैं, जो प्रकृतिभद्र, शान्त, स्वभावतः क्रोध, मान, माया एवं लोभ की प्रतनुता लिये हुए, मृदु मार्दवसम्पन्न, स्वभावयुक्त, आलीन, आज्ञापालक, विनीत, माता-पिता की सेवा करने वाले, माता-पिता के वचनों का अतिक्रमण नहीं करने वाले, अल्पेच्छा, आवश्यकताएं

रखने वाले, अल्पारंभ, अल्प परिग्रह, अल्पारंभ-अल्पसमारंभ बहुत वर्षों का आयुष्य भोगते हुए, आयुष्य पूरा कर, मृत्यु-काल आने पर देह-त्याग कर वानव्यन्तर देवलोकों में से किसी में देवरूप में उत्पन्न होते हैं । अवशेष वर्णन पीछले सूत्र के सदृश है । केवल इतना अन्तर है–इनकी स्थिति-आयुष्यपरिमाण चौदह हजार वर्ष का होता है ।

जो ग्राम, सन्निवेश आदि में स्त्रियाँ होती हैं, जो अन्तःपुर के अन्दर निवास करती हों, जिनके पति परदेश गये हों, जिनके पति मर गये हों, बाल्यावस्था में ही विधवा हो गई हों, जो पतियों द्वारा परित्यक्त कर दी गई हों, जो मातृरक्षिता हों, जो पिता द्वारा रक्षित हों, जो भाइयों द्वारा रक्षित हों, जो कुलगृह द्वारा रक्षित हों, जो श्वसुर-कुल द्वारा रक्षित हों, जो पति या पिता आदि के मित्रों, अपने हितैषियों मामा, नाना आदि सम्बन्धियों, अपने सगोत्रीय देवर, जेठ आदि पारिवारिक जनों द्वारा रक्षित हों, विशेष संस्कार के अभाव में जिनके नख, केश, कांख के बाल बढ़ गये हों, जो धूप, पुष्प, सुगन्धित पदार्थ, मालाएं धारण नहीं करती हों, जो अस्नान, स्वेद जल्ल, मल्ल, पंक पारितापित हों, जो दूध दहीं मक्खन धृत तैल गुड़ नमक मधु मद्य और मांस रहित आहार करती हों, जिनकी ईच्छाएं बहुत कम हों, जिनके धन, धान्य आदि परिग्रह बहुत कम हो, जो अल्प आरम्भ समारंभ द्वारा अपनी जीविका चलाती हों, अकाम ब्रह्मचर्य का पालन करती हों, पति-शय्या का अतिक्रमण नहीं करती हों–इस प्रकार के आचरण द्वारा जीवनयापन करती हों, वे बहुत वर्षों का आयुष्य भोगते हुए, आयुष्य पूरा कर, मृत्यु काल आने पर देह-त्याग कर वानव्यन्तर देवलोकों में से किसी में देवरूप में उत्पन्न होती हैं । प्राप्त देवलोक के अनुरूप उनकी गति, स्थिति तथा उत्पत्ति होती है । वहाँ उनकी स्थिति चौंसठ हजार वर्षों की होती है ।

जो ग्राम तथा सन्निवेश आदि पूर्वोक्त स्थानों में मनुष्य रूप में उत्पन्न होते हैं, जो एक भात तथा दूसरा जल, इन दो पदार्थों का आहार रूप में सेवन करने वाले, उदकतृतीय–भात आदि दो पदार्थ तथा तीसरे जल का सेवन करने वाले, उदकसप्तम, उदकैकादश, गौतम ! विशेष रूप से प्रशिक्षित ठिंगने बैल द्वारा विविध प्रकार के मनोरंजक प्रदर्शन प्रस्तुत कर भिक्षा मांगने वाले, गोव्रतिक, गृहधर्मी को ही कल्याणकारी मानने वाले एवं उसका अनुसरण करने वाले, धर्मचिन्तक, सभासद, विनयाश्रित भक्तिमार्गी, अक्रियावादी, वृद्ध, श्रावक, ब्राह्मण आदि, जो दूध, दहीं, मक्खन, घृत, तेल, गुड़, मधु, मद्य तथा माँस को अपने लिए अकल्प्य मानते हैं, सरसों के तैल के सिवाय इनमें से किसी का सेवन नहीं करते, जिनकी आकांक्षाएं बहुत कम होती है...ऐसे मनुष्य पूर्व वर्णन के अनुरूप मरकर वानव्यन्तर देव होते हैं । वहाँ उनका आयुष्य ८४ हजार वर्ष का बतलाया गया है ।

गंगा के किनारे रहने वाले वानप्रस्थ तापस कई प्रकार के होते हैं–जैसे होतृक, पोतृक, कौतृक, यज्ञ करने वाले, श्राद्ध करने वाले, पात्र धारण करने वाले, कुण्डी धारण करने वाले श्रमण, फल-भोजन करने वाले, उन्मज्जक, निमज्जक, संप्रक्षालक, दक्षिणकूलक, उत्तरकूलक, शंखध्मायक, कूलध्मायक, मृगलुब्धक, हस्ति-तापस, उद्दण्डक, दिशाप्रोक्षी, वृक्ष की छाल को वस्त्रों की तरह धारण करने वाले, बिलवासी, वेलवासी, जलवासी, वृक्षमूलक, अम्बुभक्षी, वायुभक्षी, शैवालभक्षी, मूलाहार, कन्दाहार, त्वचाहार, पत्राहार, पुष्पाहार, बीजाहार, अपने आप गिरे हुए, पृथक् हुए कन्द, मूल, छाल, पत्र, पुष्प तथा फल का आहार करने वाले, पंचाग्नि की आतापना से अपनी देह को अंगारों में पकी हुई सी, भाड़ में भुनी हुई सी बनाते हुए बहुत वर्षों तक वानप्रस्थ पर्याय का पालन करते हैं । मृत्यु-काल आने पर देह त्यागकर वे उत्कृष्ट ज्योतिष्क देवों में देव रूप में उत्पन्न होते हैं । वहाँ उनकी स्थिति एक लाख वर्ष अधिक एक पल्योपम–प्रमाण होती है । क्या वे परलोक के आराधक होते हैं ? नहीं ऐसा नहीं होता । अवशेष वर्णन पूर्व की तरह जानना चाहिए ।

(ये) जो ग्राम, सन्निवेश आदि में मनुष्य रूप में उत्पन्न होते हैं, प्रव्रजित होकर अनेक रूप में श्रमण होते हैं–जैसे कान्दर्पिक, कौकुचिक, मौखरिक, गीतरतिप्रिय, तथा नर्तनशील, जो अपने-अपने जीवन-क्रम के अनुसार आचरण करते हुए बहुत वर्षों तक श्रमण-जीवन का पालन करते हैं, पालन कर अन्त समय में अपने पाप-स्थानों का आलोचन-प्रतिक्रमण नहीं करते–वे मृत्युकाल आने पर देह-त्याग कर उत्कृष्ट सौधर्म-कल्प में–हास्यक्रीड़ा प्रधान देवों में उत्पन्न होते हैं । वहाँ उनकी गति आदि अपने पद के अनुरूप होती है । उनकी स्थति एक लाख वर्ष अधिक एक पल्योपम की होती है । जो ग्राम...सन्निवेश आदि में अनेक प्रकार के परिव्राजक होते हैं, जैसे–सांख्य, योगी, कापिल, भार्गव, हंस, परमहंस, बहूदक तथा कुटीचर संज्ञक चार प्रकार के यति एवं कृष्ण परिव्राजक–उनमें आठ

ब्राह्मण-परिव्राजक होते हैं, जो इस प्रकार हैं–

सूत्र – ४५-४७

कर्ण, करकण्ट, अम्बड, पाराशर, कृष्ण, द्वैपायन, देवगुप्त तथा नारद । आठ क्षत्रिय–परिव्राजक–क्षत्रिय जाति में से दीक्षिप्त परिव्राजक होते हैं । शीलधी, शशिधर, नग्नक, भग्नक, विदेह, राजराज, राजराम तथा बल ।

सूत्र - ४८

वे परिव्राजक ऋक्, यजु, साम, अथर्वण–इन चारों वेदों, पाँचवे इतिहास, छठे निघण्टु के अध्येता थे । उन्हें वेदों का सांगोपांग रहस्य बोधपूर्वक ज्ञान था । वे चारों वेदों के सारक, पारग, धारक, तथा वेदों के छहों अंगों के ज्ञाता थे । वे षष्टितन्त्र–में विशारद या निपुण थे । संख्यान, शिक्षा, वेद मन्त्रों के उच्चारण के विशिष्ट विज्ञान, कल्प, व्याकरण, छन्द, निरुक्त, ज्योतिषशास्त्र तथा अन्य ब्राह्मण-ग्रन्थ इन सब में सुपरिनिष्ठित-सुपरिकपक्व ज्ञानयुक्त होते हैं । वे परिव्राजक दान-धर्म, शौच-धर्म, दैहिक शुद्धि एवं स्वच्छतामूलक आचार तीर्थाभिषेक आख्यान करते हुए, प्रज्ञापन करते हुए, प्ररूपण करते हुए–विचरण करते हैं । उनका कथन है, हमारे मतानुसार जो कुछ भी अशुचि प्रतीत हो जाता है, वह मिट्टी लगाकर जल से प्रक्षालित कर लेने पर पवित्र हो जाता है । इस प्रकार हम स्वच्छ देह एवं वेषयुक्त तथा स्वच्छाचार युक्त हैं, शुचि, शुच्याचार युक्त हैं, अभिषेक द्वारा जल से अपने आपको पवित्र कर निर्विघ्नतया स्वर्ग जाएंगे ।

उन परिव्राजकों के लिए मार्ग में चलते समय के सिवाय कूए, तालाब, नदी, वापी, पुष्करिणी, दीर्घिका, क्यारी, विशाल सरोवर, गुंजालिका तथा जलाशय में प्रवेश करना कल्प्य नहीं है । शकट यावत् स्यन्दमानिका पर चढ़कर जाना उन्हें नहीं कल्पता–उन परिव्राजकों को घोड़े, हाथी, ऊंट, बैल, भैंसे तथा गधे पर सवार होकर जाना नहीं कल्पता । इसमें बलाभियोग का अपवाद है । उन परिव्राजकों को नटों यावत् दिखाने वालों के खेल, पहलवानों की कुश्तियाँ, स्तुति-गायकों के प्रशस्तिमूलक कार्य-कलाप आदि देखना, सूनना नहीं कल्पता । उन परिव्राजकों के लिए हरी वनस्पति का स्पर्श करना, उन्हें परस्पर घिसना, हाथ आदि द्वारा अवरुद्ध करना, शाखाओं, पत्तों आदि को ऊंचा करना या उन्हें मोड़ना, उखाड़ना कल्प्य नहीं हे ऐसा करना उनके लिए निषिद्ध है। उन परिव्राजकों के लिए स्त्री-कथा, भोजन-कथा, देश-कथा, राज-कथा, चोर-कथा, जनपद-कथा, जो अपने लिए एवं दूसरों के लिए हानिप्रद तथा निरर्थक है, करना कल्पनीय नहीं है ।

उन परिव्राजकों के लिए तूंबे, काठ तथा मिट्टी के पात्र के सिवाय लोहे, रांगे, ताँबे, जसद, शीशे, चाँदी या सोने के पात्र या दूसरे बहुमूल्य धातुओं के पात्र धारण करना कल्प्य नहीं है । उन परिव्राजकों को लोहे के या दूसरे बहुमूल्य बन्ध–इन से बंधे पात्र रखना कल्प्य नहीं है । उन परिव्राजकों को एक धातु से–गेरुए वस्त्रों के सिवाय तरह तरह के रंगों से रंगे हुए वस्त्र धारण करना नहीं कल्पता । उन परिव्राजकों को ताँबे के एक पवित्रक के अतिरिक्त हार, अर्धहार, एकावली, मुक्तावली, कनकावली, रत्नावली, मुखी, कण्ठमुखी, प्रालम्ब, त्रिसरक, कटिसूत्र, दश-मुद्रिकाएं, कटक, त्रुटित, अंगद, केयूर, कुण्डल, मुकूट तथा चूडामणि रत्नमय शिरोभूषण धारण करना नहीं कल्पता । उन परिव्राजकों को फूलों से बने केवल एक कर्णपूर के सिवाय गूँथकर बनाई गई मालाएं, लपेट कर बनाई गई मालाएं, फूलों को परस्पर संयुक्त कर बनाई गई मालाएं या संहित कर परस्पर एक दूसरे में उलझा कर बनाई गई मालाएं–ये चार प्रकार की मालाएं धारण करना नहीं कल्पता । उन परिव्राजकों को केवल गंगा की मिट्टी के अतिरिक्त अगर, चन्दन या केसर से शरीर को लिप्त करना नहीं कल्पता ।

उन परिव्राजकों के लिए मगध देश के तोल के अनुसार एक प्रस्थ जल लेना कल्पता है । वह भी बहता हुआ हो, एक जगह बंधा हुआ नहीं । वह भी यदि स्वच्छ हो तभी ग्राह्य है, कीचड़युक्त हो तो ग्राह्य नहीं है । स्वच्छ होने के साथ-साथ वह बहुत साफ और निर्मल हो, तभी ग्राह्य है अन्यथा नहीं । वह वस्त्र से छाना हुआ हो तो उनके लिए कल्प्य है, अनछाना नहीं । वह भी यदि दिया गया हो, तभी ग्राह्य है, बिना दिया हुआ नहीं । वह भी केवल पीने के लिए ग्राह्य है, हाथ पैर, चरू, चमच, धोने के लिए या स्नान करने के लिए नहीं । उन परिव्राजकों के लिए मागधतोल अनुसार एक आढक जल लेना कल्पता है । वह भी बहता हुआ हो, एक जगह बंधा हुआ या बन्द नहीं यावत् वह भी केवल हाथ, पैर, चरू, चमच, धोनेके लिए ग्राह्य है, पीने के लिए या स्नान करने के लिए नहीं ।

वे परिव्राजक इस प्रकार के आचार या चर्या द्वारा विचरण करते हुए, बहुत वर्षों तक परिव्राजक-पर्याय का पालन करते हैं । बहुत वर्षों तक वैसा कर मृत्युकाल आने पर देह त्याग कर उत्कृष्ट ब्रह्मलोक कल्प में देव रूप में उत्पन्न होते हैं । तदनुरूप उनकी गति और स्थिति होत है । उनकी स्थिति या आयुष्य दस सागरोपम कहा गया है । अवशेष वर्णन पूर्ववत् है ।

सूत्र - ४९

उस काल, उस समय, एक बार जब ग्रीष्म ऋतु का समय था, जेठ का महीना था, अम्बड़ परिव्राजक के सात सौ अन्तेवासी गंगा महानदी के दो किनारों से काम्पिल्यपुर नामक नगर से पुरिमताल नामक नगर को रवाना हुए । वे परिव्राजक चलते-चलते एक ऐसे जंगल में पहुँच गये, जहाँ कोई गाँव नहीं था, न जहाँ व्यापारियों के काफिले, गोकुल, उनकी निगरानी करने वाले गोपालक आदि का ही आवागमन था, जिसके मार्ग बड़े विकट थे । वे जंगल का कुछ भाग पार कर पाये थे कि चलते समय अपने साथ लिया हुआ पानी पीते-पीते क्रमशः समाप्त हो गया । तब वे परिव्राजक, जिनके पास का पानी समाप्त हो चूका था, प्यास से व्याकुल हो गये । कोई पानी देने वाला दिखाई नहीं दिया । वे परस्पर एक दूसरे को संबोधित कर कहने लगे ।

देवानुप्रियो ! हम ऐसे जंगल का, जिसमें कोई गाँव नहीं है । यावत् कुछ ही भाग पार कर पाये कि हमारे पास जो पानी था, समाप्त हो गया । अतः देवानुप्रियो ! हमारे लिए यही श्रेयस्कर है, हम इस ग्रामरहित वन में सब दिशाओं में चारों और जलदाता की मार्गणा-गवेषणा करें । उन्होंने परस्पर ऐसी चर्चा कर यह तय किया । ऐसा तय कर उन्होंने उस गाँव रहित जंगल में सब दिशाओं में चारों ओर जलदाता की खोज की । खोज करने पर भी कोई जलदाता नहीं मिला । फिर उन्होंने एक दूसरे को संबोधित कर कहा । देवानुप्रियो ! यहाँ कोई पानी देने वाला नहीं है । अदत्त, सेवन करना हमारे लिए कल्प्य नहीं है । इसलिए हम इस समय आपत्तिकाल में भी अदत्त का ग्रहण न करें, सेवन न करें, जिससे हमारे तप का लोप न हो । अतः हमारे लिए यही श्रेयस्कर है, हम त्रिदण्ड-कमंडलु, रुद्राक्ष-मालाएं, करोटिकाएं, वृषिकाएं, षण्नालिकाएं, अंकुश, केशरिकाएं, पवित्रिकाएं, गणेत्रिकाएं, सुमिरिनियाँ, छत्र, पादुकाएं, काठ की खड़ाऊएं, धातुरक्त शाटिकाएं एकान्त में छोड़कर गंगा महानदी में वालू का संस्तारक तैयार कर संलेखनापूर्वक–शरीर एवं कषायों को क्षीण करते हुए आहार-पानी का परित्याग कर, कटे हुए वृक्ष जैसी निश्चेष्टावस्था स्वीकार कर मृत्यु की आकांक्षा न करते हुए संस्थित हो । परस्पर एक दूसरे से ऐसा कह उन्होंने यह तय किया । ऐसा तय कर उन्होंने त्रिदण्ड आदि अपने उपकरण एकान्त में डाल दिये । महानदी गंगा में प्रवेश किया। वालू का संस्तारक किया । वे उस पर आरूढ़ हुए । पूर्वाभिमुख हो पद्मासन में बैठे । बैठकर दोनों हाथ जोड़े और बोले ।

अर्हत्–इन्द्र आदि द्वारा पूजित यावत् सिद्धावस्था नामक स्थिति प्राप्त किये हुए–सिद्धों को नमस्कार हो । भगवान् महावीर को, जो सिद्धावस्था प्राप्त करने में समुद्यत हैं, हमारा नमस्कार हो । हमारे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक अम्बड परिव्राजक को नमस्कारहो । पहले हमने अम्बड परिव्राजक के पास स्थूल प्राणातिपात, मृषावाद, चोरी, सब प्रकार के अब्रह्मचर्य तथा स्थूल परिग्रह का जीवन भर के लिए प्रत्याख्यान किया था । इन समय भगवान महावीर के साक्ष्य से हम सब प्रकार की हिंसा, आदि का जीवनभर के लिए त्याग करते हैं । सर्व प्रकार के क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रेम, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान, पैशुन्य, परपरिवाद, रति, अरति, मायामृषा, तथा मिथ्यादर्शन-शल्य जीवनभर के लिए त्याग करते हैं ।

अकरणीय योग–क्रिया का जीवनभर के लिए त्याग करते हैं । अशन, पान, खादिम, स्वादिम, इन चारों का जीवनभर के लिए त्याग करते हैं । यह शरीर, जो इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ, मनोम, प्रेय, प्रेज्य, स्थैर्यमय, वैश्वासिक, सम्मत, बहुमत, अनुमत, गहनों की पेटी के समान प्रीतिकर है, इसी सर्दी न लग जाए, गर्मी न लग जाए, यह भूखा न रह जाए, प्यासा न रह जाए, इसे साँप न डस ले, चोर उपद्रुत न करें, डांस न काटें, मच्छर न काटें, वात, पित्त, (कफ) सन्निपात आदि से जनित विविध रोगों द्वारा, तत्काल मार डालने वाली बीमारियों द्वारा यह पीड़ित न हो, इसे परिषह, उपसर्ग न हों, जिसके लिए हर समय ऐसा ध्यान रखते हैं, उस शरीर का हम चरम उच्छ्वास-निःश्वास तक व्युत्सर्जन करते हैं–संलेखना द्वारा जिनके शरीर तथा कषाय दोनों ही कृश हो रहे थे, उन परिव्राजकों ने

आहार-पानी का परित्याग कर दिया । कटे हुए वृक्ष की तरह अपने शरीर को चेष्टा-शून्य बना लिया। मृत्यु की कामना न करते हुए शान्त भाव से वे अवस्थित रहे । इस प्रकार उन परिव्राजकों ने बहुत से चोरों प्रकार के आहार अनशन द्वारा छिन्न किए–वैसा कर दोषों की आलोचना की–उनका निरीक्षण किया, उनसे प्रतिक्रान्त हुए, समाधि-दशा प्राप्त की । मृत्यु-समय आने पर देह त्याग कर ब्रह्मलोक कल्प में वे देव रूप में उत्पन्न हुए । उनके स्थान के अनुरूप उनकी गति बतलाई गई है । उनका आयुष्य दस सागरोपम कहा गया है । वे परलोक के आराधक हैं । अवशेष वर्णन पहले की तरह है ।

सूत्र - ५०

भगवन् ! बहुत से लोग एक दूसरे से आख्यात करते हैं, भाषित करते हैं तथा प्ररूपित करते हैं कि अम्बड परिव्राजक काम्पिल्यपुर नगर में सौ घरों में आहार करता है, सौ घरों में निवास करता है । भगवन् ! यह कैसे है ? बहुत से लोग आपस में एक दूसरे से जो ऐसा कहते हैं, प्ररूपित करते हैं कि अम्बड परिव्राजक काम्पिल्यपुर में सौ घरों में आहार करता है, सौ घरों में निवास करता है, यह सच है । गौतम ! मैं भी ऐसा ही कहता हूँ, प्ररूपित करता हूँ । अम्बड परिव्राजक के सम्बन्ध में सौ घरों में आहार करने तथा सौ घरों में निवास करने की जो बात कही जाती है, भगवन् ! उसमें क्या रहस्य है ?

गौतम ! अम्बड प्रकृति से भद्र, परोपकारपरायण एवं शान्त है । वह स्वभावतः क्रोध, मान, माया एवं लोभ की हलकापन लिये हुए है । वह मृदुमार्दवसंपन्न, अहंकाररहित, आलीन, तथा विनयशील है । उसने दो-दो दिनों का उपवास करते हुए अपनी भुजाएं ऊंची उठाये, सूरज के सामने मुँह किये आतापना-भूमि में आतापना लेते हुए तप का अनुष्ठान किया । फलतः शुभ परिणाम, प्रशस्त अध्यवसाय, विशुद्ध होती हुई प्रशस्त लेश्याओं, उसके वीर्य-लब्धि, वैक्रिय-लब्धि तथा अवधिज्ञान-लब्धि के आवरक कर्मों का क्षयोपशम हुआ । ईहा, अपोह, मार्गण, गवेषण, ऐसा चिन्तन करते हुए उसको किसी दिन वीर्यलब्धि, वैक्रियलब्धि तथा अवधिज्ञानलब्धि प्राप्त हो गई । अत एव लोगों को आश्चर्य-चकित करने के लिए इनके द्वारा वह काम्पिल्यपुर में एक ही समय में सौ घरों में आहार करता है, सौ घरों में निवास करता है । गौतम ! इसीलिए अम्बड परिव्राजक के द्वारा काम्पिल्यपुर में सौ घरों में आहार करने तथा सौ घरों में निवास करने की बात कही जाती है ।

भगवन् ! क्या अम्बड परिव्राजक आपके पास मुण्डित होकर–अगारअवस्था से अनगारअवस्था प्राप्त करने में समर्थ है ? गौतम ! ऐसा सम्भव नहीं है–अम्बड परिव्राजक श्रमणोपासक है, जिसने जीव, अजीव आदि पदार्थों के स्वरूप को अच्छी तरह समझा है यावत् श्रमण निर्ग्रन्थों को प्रतिलाभित करता हुआ आत्मभावित है । जिसके घर के किवाड़ों में आगल नहीं लगी रहती हो, अपावृतद्वार, त्यक्तान्तःपुर गृह द्वार प्रवेश, ये तीन विशेषताएं थी । अम्बड परिव्राजक ने जीवनभर के लिए स्थूल प्राणातिपात, स्थूल मृषावाद, स्थूल अदत्तादान, स्थूल परिग्रह तथा सभी प्रकार के अब्रह्मचर्य का प्रत्याख्यान है ।

अम्बड परिव्राजक को मार्गगमन के अतिरिक्त गाड़ी की धूरी-प्रमाण जल में शीघ्रता से उतरना नहीं कल्पता। गाड़ी आदि पर सवार होना नहीं कल्पता । यहाँ से लेकर गंगा की मिट्टी के लेप तक का समग्र वर्णन पूर्ववत् जानना । अम्बड परिव्राजक को आधार्मिक तथा औद्देशिक–भोजन, मिश्रजात, अध्यवपूर, पूतिकर्म, क्रीतकृत, प्रामित्य, अनसृष्ट, अभ्याहृत, स्थापित, अपने लिए संस्कारित भोजन, कान्तारभक्त, दुर्भिक्षभक्त, ग्लान-भक्त, वार्दलिकभक्त, प्राधूर्णक-भक्त, अम्बड परिव्राजक को खाना-पीना नहीं कल्पता । इसी प्रकार अम्बड परि-व्राजक को मूल, (कन्द, फल, हरे तृण) बीजमय भोजन खाना-पीना नहीं कल्पता ।

अम्बड परिव्राजक ने चार प्रकार के अनर्थदण्ड–परित्याग किया । वे इस प्रकार हैं–१. अपध्यानाचरित, २. प्रमादाचरित, ३. हिंस्रप्रदान, ४. पापकर्मोपदेश । अम्बड को मागधमान के अनुसार आधा आढक जल लेना कल्पता है । वह भी प्रवहमान हो, अप्रवहमान नहीं । वह परिपूत हो तो कल्प्य, अनछाना नहीं । वह भी सावद्य, निरवद्य समझकर नहीं । सावद्य भी वह उसे सजीव, अजीव समझकर नहीं । वैसा जल भी दिया हुआ हि कल्पता है, न दिया हुआ नहीं । वह भी हाथ, पैर, चरु, चमच धोने के लिए या पीने के लिए ही कल्पता है, नहाने के लिए नहीं । अम्बड को मागधमान अनुसार एक आढक पानी लेना कल्पता है । वह भी बहता हुआ, यावत् दिया हुआ ही

कल्पता है, बिना दिया नहीं । वह भी स्नान के लिए कल्पता है, हाथ, पैर, चरु, चमच धोने के लिए या पीने के लिए नहीं । अर्हत् या अर्हत्-चैत्यों (जिनालय) अतिरिक्त अम्बड को अन्ययूथिक, उनके देव, उन द्वारा परिगृहीत चैत्य–उन्हें वन्दन करना, नमस्कार करना, उनकी पर्युपासना करना नहीं कल्पता ।

भगवन् ! अम्बड परिव्राजक मृत्युकाल आने पर देह-त्याग कर कहाँ जाएगा ? कहाँ उत्पन्न होगा ? गौतम! अम्बड परिव्राजक उच्चावच शीलव्रत, गुणव्रत, विरमण, प्रत्याख्यान एवं पोषधोपवास द्वारा आत्मभावित होता हुआ बहुत वर्षों तक श्रमणोपासक-पर्याय का पालन करेगा । वैसा कर एक मास की संलेखना और एक मास का अनशन सम्पन्न कर, आलोचना, प्रतिक्रमण कर, मृत्यु-काल आने पर वह समाधिपूर्वक देह-त्याग करेगा । वह ब्रह्मलोक कल्प में देवरूप में उत्पन्न होगा । वहाँ अनेक देवों की आयु-स्थिति दस सागरोपम-प्रमाण बतलाई गई । अम्बड देव का भी आयुष्य दस सागरोपम-प्रमाण होगा । भगवन् ! अम्बड देव अपना आयु-क्षय, भव-क्षय, स्थिति-क्षय होने पर उस देवलोक से च्यवन कर कहाँ जाएगा ? कहाँ उत्पन्न होगा ?

गौतम ! महाविदेह क्षेत्र में ऐसे जो कुल हैं यथा–धनाढ्य, दीप्त, प्रभावशाली, सम्पन्न, भवन, शयन, आसन, यान, वाहन, विपुल साधन-सामग्री तथा सोना, चाँदी, सिक्के आदि प्रचुर धन के स्वामी होते हैं । वे आयोग-प्रयोग-संप्रवृत्त नीतिपूर्वक द्रव्य के उपार्जन में संलग्न होते हैं । उनके यहाँ भोजन कर चूकने के बाद भी खाने-पीने के बहुत पदार्थ बचते हैं । उनके घरों में बहुत से नौकर, नौकरानियाँ, गायें, भैंसें, बैल, पाड़े, भेड़-बकरियाँ आदि होते हैं। वे लोगों द्वारा अपरिभूत होते हैं । अम्बड ऐसे कुलों में से किसी एक में पुरुषरूप उत्पन्न होगा । अम्बड शिशु के रूप में जब गर्भ में आयेगा, तब माता-पिता की धर्म में आस्था दृढ़ होगी ।

नौ महीने साढ़े सात दिन व्यतीत होने पर बच्चे का जन्म होगा । उसके हाथ-पैर सुकोमल होंगे । उसके शरीर की पाँचों इन्द्रियाँ अहीन-प्रतिपूर्ण होंगी । वह उत्तम लक्षण, व्यंजन होगा । दैहिक फैलाव, वजन, ऊंचाई आदि की दृष्टि से वह परिपूर्ण, श्रेष्ठ तथा सर्वांगसुन्दर होगा । उसका आकार चन्द्र के सदृश सौम्य होगा । वह कान्तिमान्, देखने में प्रिय एवं सुरूप होगा । तत्पश्चात् माता-पिता पहले दिन उस बालक का कुलक्रमागत पुत्र-जन्मोचित अनुष्ठान करेंगे । दूसरे दिन चन्द्र-सूर्य-दर्शनिका नामक जन्मोत्सव करेंगे । छठे दिन जागरिका करेंगे । ग्यारहवें दिन वे अशुचि-शोधन-विधान से निवृत्त होंगे । इस बालक के गर्भ में आते ही हमारी धार्मिक आस्था दृढ़ हुई थी, अतः यह 'दृढ़प्रतिज्ञ' नाम से संबोधित किया जाए, यह सोचकर माता-पिता बारहवे दिन उसका 'दृढ़प्रतिज्ञ'–यह गुणानुगत, गुणनिष्पन्न नाम रखेंगे । माता-पिता यह जानकर कि अब बालक आठ वर्ष से कुछ अधिक का हो गया है, उसे शुभतिथि, शुभ करण, शुभ दिवस, शुभ नक्षत्र एवं शुभ मुहूर्त्त में शिक्षण हेतु कलाचार्य के पास ले जायेंगे । तब कलाचार्य बालक दृढ़प्रतिज्ञ को खेल एवं गणित से लेकर पक्षिशब्दज्ञान तक बहत्तर कलाएं सूत्ररूप में–सैद्धान्तिक दृष्टि से, अर्थ रूप में–व्याख्यात्मक दृष्टि से, करण रूप में–सधायेंगे, सिखायेंगे–अभ्यास करायेंगे । वे बहत्तर कलाएं इस प्रकार हैं–

१. लेख, २. गणित, ३. रूप, ४. नाट्य, ५. गीत, ६. वाद्य, ७. स्वरगत, ८. पुष्करगत, ९. समताल, १०. द्यूत, ११. जनवाद, १२. पाशक, १३. अष्टापद, १४. पौरस्कृत्य, १५. उदक-मृत्तिका, १६. अन्न-विधि, १७. पान-विधि, १८. वस्त्र-विधि, १९. विलेपन-विधि, २०. शयन-विधि, २१. आर्या, २२. प्रहलिका, २३. मागधिका, २४. गाथा, अर्धमागधी, २५. गीतिका, २६. श्लोक, २७. हिरण्य-युक्ति, २८. सुवर्ण-युक्ति, २९. गन्ध-युक्ति, ३०. चूर्ण-युक्ति, ३१. आभरण-विधि, ३२. तरुणी-प्रतिकर्म, ३३. स्त्री-लक्षण, ३४. पुरुष-लक्षण, ३५. हय-लक्षण, ३६. गज-लक्षण, ३७. गो-लक्षण, ३८. कुक्कुट-लक्षण, ३९. चक्र-लक्षण, ४०. छत्र-लक्षण, ४१. चर्म-लक्षण, ४२. दण्डलक्षण, ४३. असि-लक्षण, ४४. मणि-लक्षण, ४५. काकणी-लक्षण, ४६. वास्तु-विद्या, ४७. स्कन्धावार-मान, ४८. नगर-निर्माण, ४९. वास्तुनिवेशन, ५०. व्यूह, प्रतिव्यूह, ५१. चार-प्रतिचार, ५२. चक्रव्यूह, ५३. गरुड-व्यूह, ५४. शकट-व्यूह, ५५. युद्ध, ५६. नियुद्ध, ५७. युद्धातियुद्ध, ५८. मुष्टि-युद्ध, ५९. बाहु-युद्ध, ६०. लता-युद्ध, ६१. इषु शस्त्र, ६२. धनुर्वेद, ६३. हिरण्यपाक, ६४. सुवर्ण-पाक, ६५. वृत्त-खेल, ६६. सूत्र-खेल, ६७. नालिका-खेल, ६८. पत्रच्छेद्य, ६९. कटच्छेद्य, ७०. सजीव, ७१. निर्जीव, ७२. शकुत-रुत । ये बहत्तर कलाएं सधाकर, इनका शिक्षण देकर, अभ्यास करा कर कलाचार्य को माता-पिता को सौंप देंगे ।

तब कालक दृढ़प्रतिज्ञ के माता-पिता कलाचार्य का विपुल-प्रचुर अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, वस्त्र, गन्ध, माला तथा अलंकार द्वारा सत्कार करेंगे, सम्मान करेंगे । सत्कार-सम्मान कर उन्हें विपुल, जीविकोचित, प्रीति-दान देंगे । बहत्तर कलाओं में पंडित प्रतिबुद्ध नौ अंगों की चेतना, यौवनावस्था में विद्यमान, अठारह देशी भाषाओं में विशारद, गीतप्रिय, संगीत-विद्या, नृत्य-कला आदि में प्रवीण, अश्वयुद्ध, गजयुद्ध, रथयुद्ध, बाहुयुद्ध इन सब में दक्ष, विकालचारी, साहसिक, दृढ़प्रतिज्ञ यों सांगोपांग विकसित होकर सर्वथा भोग-समर्थ हो जाएगा ।

माता-पिता बहत्तर कलाओं में मर्मज्ञ, अपने पुत्र दृढ़प्रितज्ञ को सर्वथा भोग-समर्थ जानकर अन्न, पान, लयन, उत्तम वस्त्र तथा शयन–उत्तम शय्या, आदि सुखप्रद सामग्री का उपभोग करने का आग्रह करेंगे । तब कुमार दृढ़प्रतिज्ञ अन्न (पान, गृह, वस्त्र) शयन आदि भोगोंमें आसक्त, अनुरक्त, गृद्ध, मूर्च्छित तथा अध्यवसित नहीं होगा । जैसे उत्पल, पद्म, कुमुद, नलिन, सुभग, सुगन्ध, पुण्डरीक, महापुण्डरीक, शतपत्र, सहस्रपत्र, शतसहस्रपत्र आदि विविध प्रकार के कमल कीचड़में उत्पन्न होते हैं, जलमें बढ़ते हैं पर जल-रज से लिप्त नहीं होते, उसी प्रकार कुमार दृढ़प्रतिज्ञ जो काममय जगत में उत्पन्न होगा, भोगमय जगत में संवर्धित होगा, पर काम-रज से, भोग-रज से, लिप्त नहीं होगा, मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन तथा अन्यान्य सम्बन्धी, परिजन इनमें आसक्त नहीं होगा ।

वह तथारूप स्थविरों के पास केवलबोधि प्राप्त करेगा । गृहवास का परित्याग कर वह अनगार-धर्म में प्रव्रजित होगा । वे अनगार भगवान्–मुनि ईर्या यावत् गुप्त ब्रह्मचारी होंगे । इस प्रकार की चर्या में संप्रवर्तमान हुए मुनि दृढ़प्रतिज्ञ को अनन्त, अनुत्तर, निर्व्याघात, निरावरण, कृत्स्न, प्रतिपूर्ण, केवलज्ञान, केवलदर्शन उत्पन्न होगा ।

तत्पश्चात् दृढ़प्रतिज्ञ केवली बहुत वर्षों तक केवलि-पर्याय का पालन करेंगे । एक मास की संलेखना और एक मास का अनशन सम्पन्न कर जिस लक्ष्य के लिए नग्नभाव, मुण्डभाव, अस्नान, अदन्तवन, केशलुंचन, ब्रह्म-चर्यवास, अच्छत्रक, जूते या पादरक्षिका धारण नहीं करना, भूमि पर सोना, फलक पर सोना, सामान्य काठ की पटिया पर सोना, भिक्षा हेतु परगृह में प्रवेश करना, जहाँ आहार मिला हो या न मिला हो, औरों से जन्म-कर्म की भर्त्सनापूर्ण अवहेलना या तिरस्कार, खिसना, निन्दना, गर्हणा, तर्जना, ताडना, परिभवना, परिव्यथना, बाईस प्रकार के परिषह तथा देवादिकृत उपसर्ग आदि स्वीकार किये, उस लक्ष्य को पूरा कर अपने अन्तिम उच्छ्वास-निःश्वास में सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे, मुक्त होंगे, परिनिवृत्त होंगे, सब दुःखों का अन्त करेंगे ।

सूत्र - ५१

जो ग्राम, आकर, सन्निवेश आदि में प्रव्रजित श्रमण होते हैं, जैसे–आचार्यप्रत्यनीक, उपाध्याय-प्रत्यनीक, कुल-प्रत्यनीक, गण-प्रत्यनीक, आचार्य और उपाध्याय के अयशस्कर, अवर्णकारक, अकीर्तिकारक, असद्भाव, आरोपण तथा मिथ्यात्व के अभिनिवेश द्वारा अपने को, औरों को–दोनों को दुराग्रह में डालते हुए, दृढ़ करते हुए बहुत वर्षों तक श्रमण-पर्याय का पालन करते हैं । अपने पाप-स्थानों की आलोचना, प्रतिक्रमण नहीं करते हुए मृत्यु-काल आ जाने पर मरण प्राप्त कर वे उत्कृष्ट लान्तक नामक छठे देवलोक में किल्बिषिक संज्ञक देवों में देव रूप में उत्पन्न होते हैं । अपने स्थान के अनुरूप उनकी गति होती है । उनकी वहाँ स्थिति तेरह सागरोपम-प्रमाण होती है । अनाराधक होते हैं । अवशेष वर्णन पूर्ववत् है ।

जो ये संज्ञी, पर्याप्त, तिर्यग्योनिक जीव होते हैं, जैसे–जलचर, स्थलचर तथा खेचर, उनमें से कइयों के प्रशस्त, शुभ परिणाम तथा विशुद्ध होती हुई लेश्याओं के कारण ज्ञानावरणीय एवं वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम से ईहा, अपोह, मार्गणा, गवेषणा करते हुए अपनी संज्ञित्व-अवस्था से पूर्ववर्ती भवों की स्मृति हो जाती है । वे स्वयं पाँच अणुव्रत स्वीकार करते हैं । अनेकविध शीलव्रत, गुणव्रत, विरमण, प्रत्याख्यान, पोषधोपवास आदि द्वारा आत्म भावित होते हुए बहुत वर्षों तक अपने आयुष्य का पालन करते हैं । फिर वे अपने पाप-स्थानों की आलोचना कर, उनसे प्रतिक्रान्त हो, समाधि-अवस्था प्राप्त कर, मृत्यु-काल आने पर देह-त्याग कर उत्कृष्ट सहस्रार-कल्प–देवलोक में देव रूप में उत्पन्न होते हैं । अपने स्थान के अनुरूप उनकी गति होती है । उनकी वहाँ स्थिति अठारह सागरोपम-प्रमाण होती है । वे परलोक के आराधक होते हैं । अवशेष वर्णन पूर्ववत् है ।

ग्राम, आकर, सन्निवेश आदि में जो आजीवक होते हैं, जैसे–दो घरों के अन्तर से भिक्षा लेने वाले, तीन घर छोड़कर भिक्षा लेने वाले, सात घर छोड़कर भिक्षा लेने वाले, नियम-विशेषवश भिक्षा में केवल कमल लेने वाले,

प्रत्येक घर से भिक्षा लेने वाले, जब बिजली चमकती हो तब भिक्षा नहीं लेने वाले, मिट्टी से बने नाँद जैसे बड़े बर्तन में प्रविष्ट होकर तप करने वाले, वे ऐसे आचार द्वारा विहार करते हुए बहुत वर्षों तक आजीवक-पर्याय का पालन कर, मृत्यु-काल आने पर मरण प्राप्त कर, उत्कृष्ट अच्युतकल्प में देवरूप में उत्पन्न होते हैं । वहाँ अपने स्थान के अनुरूप उनकी गति होती है । उनकी स्थिति बाईस सागरोपम-प्रमाण होती है । वे आराधक नहीं होते । अवशेष वर्णन पूर्ववत् है ।

ग्राम, आकर, सन्निवेश आदि में जो ये प्रव्रजित श्रमण होते हैं, जैसे–आत्मोत्कर्षक, परपरिवादक, भूति-कर्मिक, कौतुककारक । वे इस प्रकार की चर्चा लिए विहार करते हुए बहुत वर्षों तक श्रमण-पर्याय का पालन करते हैं । अपने गृहीत पर्याय का पालन कर वे अन्ततः अपने पाप-स्थानों की आलोचना नहीं करते हुए, उनसे प्रतिक्रान्त नहीं होते हुए, मृत्यु-काल आने पर देह-त्याग कर उत्कृष्ट अच्युत कल्प में आभियोगिक देवों में देव रूप में उत्पन्न होते हैं । वहाँ अपने स्थान के अनुरूप उनकी गति होती है । उनकी स्थिति बाईस सागरोपम-प्रमाण होती है । वे परलोक के आराधक नहीं होते । अवशेष वर्णन पूर्ववत् है ।

ग्राम, आकर, सन्निवेश आदि में जो निह्नव होते हैं, जैसे–बहुरत, जीवप्रादेशिक, अव्यक्तिक, सामुच्छेदिक, द्वैक्रिय, त्रैराशिक तथा अबद्धिक, वे सातों ही जिन-प्रवचन का अवलाप करने वाले या उलटी प्ररूपणा करने वाले होते हैं । वे केवल चर्या आदि बाह्य क्रियाओं तथा लिंग में श्रमणों के सदृश होते हैं । वे मिथ्यादृष्टि हैं । असद्भाव–निराधार परिकल्पना द्वारा, मिथ्यात्व के अभिनिवेश द्वारा अपने को, औरों को–दोनों को दुराग्रह में डालते हुए, दृढ़ करते हुए–अतथ्यपरक संस्कार जमाते हुए बहुत वर्षों तक श्रमण-पर्याय का पालन करते हैं । मृत्यु-काल आने पर देह-त्याग कर उत्कृष्ट ग्रैवेयक देवों में देवरूप में उत्पन्न होते हैं । वहाँ अपने स्थान के अनुरूप उनकी गति होती है । वहाँ उनकी स्थिति इकत्तीस सागरोपम-प्रमाण होती है । वे परलोक के आराधक नहीं होते । अवशेष वर्णन पूर्ववत् है ।

ग्राम, आकर, सन्निवेश आदि में जो ये मनुष्य होते हैं, जैसे अल्पारंभ, अल्पपरिग्रह, धार्मिक, धर्मानुग, धर्मिष्ठ, धर्माख्यायी, धर्मप्रलोकी, धर्मप्ररंजन, धर्मसमुदाचार, सुशील, सुव्रत, सुप्रत्यानन्द, वे साधुओं के पास–यावत् स्थूल रूप में जीवनभर के लिए हिंसा से, क्रोध से, मान से, माया से, लोभ से, प्रेय से, द्वेष से, कलह से, अभ्याख्यान से, पैशुन्य से, परपरिवाद से, रति-अरति से तथा मिथ्यादर्शनशल्य से प्रतिविरत होते हैं, अंशतः–अनिवृत्त होते हैं, अंशतः–आरम्भ-समारम्भ से विरत होते हैं, अंशतः–अविरत होते हैं, वे जीवन भर के लिए अंशतः किसी क्रिया के करने-कराने से प्रतिविरत होते हैं, अंशतः अप्रतिविरत होते हैं, वे जीवनभर के लिए अंशतः पकाने, पकवाने से प्रतिविरत होते हैं, अंशतः अप्रतिविरत होते हैं, वे जीवनभर के लिए कूटने, पीटने, तर्जित करने, ताड़ना करने, वध, बन्ध, परिक्लेश अंशतः प्रतिविरत होते हैं, अंशतः अप्रतिविरत होते हैं, वे जीवनभर के लिए स्नान, मर्दन, वर्णक, विलेपन, शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गन्ध, माला तथा अलंकार से अंशतः प्रतिविरत होते हैं अंशतः अप्रतिविरत होते हैं, इसी प्रकार और भी पापमय प्रवृत्ति युक्त, छल-प्रपंच युक्त, दूसरों के प्राणों को कष्ट पहुँचाने वाले कर्मों से जीवनभर के लिए अंशतः प्रतिविरत होते हैं, अंशतः अप्रतिविरत होते हैं ।

ऐसे श्रमणोपासक होते हैं, जिन्होंने जीव, अजीव आदि पदार्थों का स्वरूप भली भाँति समझा है, पुण्य पाप का भेद जाना है, आस्रव, संवर, निर्जरा, क्रिया, अधिकरण, बन्ध एवं मोक्ष को भलीभाँति अवगत किया है, किसी दूसरे की सहायता के अनिच्छुक हैं–जो देव, नाग, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किंपुरुष, गरुड, गन्धर्व, महोरग आदि देवों द्वारा निर्ग्रन्थ-प्रवचन से अनतिक्रमणीय है, निर्ग्रन्थ-प्रवचन में जो निःशंक, निष्कांक्ष, निर्विचिकित्स, लब्धार्थ, गृहीतार्थ, पृष्टार्थ, अभिगतार्थ, विनिश्चितार्थ हैं, जो अस्थि और मज्जा तक धर्म के प्रति प्रेम तथा अनुराग से भरे हैं, जिनका यह निश्चित विश्वास है, निर्ग्रन्थ-प्रवचन ही अर्थ है, अन्य अनर्थ हैं, उच्छित, अपावृतद्वार, त्यक्तान्तःपुरगृह-द्वारप्रवेश, चतुर्दशी, अष्टमी, अमावास्या एवं पूर्णिमा को परिपूर्ण पौषध का सम्यक् अनुपालन करते हुए, श्रमण-निर्ग्रन्थों को प्रासुक, एषणीय, अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य आहार, वस्त्र, पात्र, कम्बल, पाद-प्रोञ्छन, औषध, भेषज, दवा, प्रतिहारिक, पाट, बाजोठ, ठहरने का स्थान, बिछाना आदि द्वारा प्रतिलाभित करते हुए विहार करते हैं, इस प्रकार का जीवन जीते हुए वे अन्ततः भोजन का त्याग कर देते हैं । बहुत से भोजन-काल

अनशन द्वारा विच्छिन्न करते हैं, बहुत दिनों तक निराहार रहते हैं । पाप-स्थानों की आलोचना करते हैं, उनसे प्रतिक्रान्त होते हैं । यों समाधि अवस्था प्राप्त कर मृत्यु-काल आने पर देह-त्याग कर उत्कृष्टतः अच्युतकल्प में देवरूप में उत्पन्न होते हैं। अपने स्थान के अनुरूप गति होती है । उनकी स्थिति बाईस सागरोपम होती है । वे परलोक के आराधक होते हैं। शेष पूर्ववत् ।

ग्राम, आकर, सन्निवेश आदि में जो ये मनुष्य होते हैं, जैसे–अनारंभ, अपरिग्रह, धार्मिक यावत् सुशील, सुव्रत, स्वात्मपरितुष्ट, वे साधुओं के साक्ष्य से जीवनभर के लिए संपूर्णतः–हिंसा, संपूर्णतः असत्य, सम्पूर्णतः चोरी, संपूर्णतः अब्रह्मचर्य तथा संपूर्णतः परिग्रह से प्रतिविरत होते हैं, संपूर्णतः क्रोध से, माया से, लोभ से, यावत् मिथ्या-दर्शनशल्य से प्रतिविरत होते हैं, सब प्रकार के आरंभ-समारंभ से, करने तथा कराने से, पकाने एवं पकवाने से सर्वथा प्रतिविरत होते हैं, कूटने, पीटने, तर्जित करने, ताड़ित करने, किसी के प्राण लेने, रस्सी आदि से बाँधने एवं किसी को कष्ट देने से सम्पूर्णतः प्रतिविरत होते हैं, स्थान, मर्दन, वर्णक, विलेपन, शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गन्ध, माला और अलंकार से सम्पूर्ण रूप में प्रतिविरत होते हैं, इसी प्रकार और भी पाप-प्रवृत्तियुक्त, छल-प्रपंचयुक्त, दूसरों के प्राणों को कष्ट पहुँचाने वाले कर्मों से जीवनभर के लिए संपूर्णतः प्रतिविरत होते हैं ।

वे अनगार ऐसे होते हैं, जो ईर्या, भाषा, समिति यावत् पवित्र आचारयुक्त जीवन का सन्निर्वाह करते हैं । ऐसी चर्या द्वारा संयमी जीवन का सन्निर्वाह करने वाले पूजनीय श्रमणों में से कइयों को अन्त यावत् केवलज्ञान, केवलदर्शन समुत्पन्न होता है । वे बहुत वर्षों तक केवलिपर्याय का पालन करते हैं । अन्त में आहार का परित्याग करते हैं, अनशन सम्पन्न कर यावत् सब दुःखों का अन्त करते हैं । जिन कइयों अनगारों को केवलज्ञान, केवलदर्शन उत्पन्न नहीं होता, वे बहुत वर्षों तक छद्मस्थ-पर्याय में होते हुए संयम-पालन करते हैं–फिर किसी आबाध के उत्पन्न होने पर या न होने पर भी वे भोजन का परित्याग कर देते हैं । बहुत दिनों का अनशन करते हैं । जिस लक्ष्य से कष्टपूर्ण संयम-पथ स्वीकार किया, उसे आराधित कर–अपने अन्तिम उच्छ्वास निःश्वास में अनन्त, अनुत्तर, निर्व्याघात, निरावरण, कृत्स्न, प्रतिपूर्ण केवलज्ञान, केवलदर्शन प्राप्त करते हैं । तत्पश्चात् सिद्ध होते हैं, सब दुःखों का अन्त करते हैं ।

कई एक ही भव करने वाले, भगवंत-संयममयी साधना द्वारा संसार-भय से अपना परित्राण करने वाले–उनके कारण, मृत्यु-काल आने पर देह-त्याग कर उत्कृष्ट सर्वार्थसिद्ध महाविमान में देवरूप में उत्पन्न होते हैं । वहाँ अपने स्थान के अनुरूप उनकी गति होती है । उनकी स्थिति तैंतीस सागरोपम-प्रमाण होती है । वे परलोक के आरधक होते हैं । शेष पूर्ववत् । ग्राम, आकर, सन्निवेश आदि में जो ये मनुष्य होते हैं, जैसे–सर्वकामविरत, सर्वराग-विरत, सर्व संगातीत, सर्वस्नेहातिक्रान्त, अक्रोध, निष्क्रोध, क्रोधोदयरहित, क्षीणक्रोध, इसी प्रकार जिनके मान, माया, लोभ क्षीण हो गए हों, वे आठों कर्म-प्रकृतियों का क्षय करते हुए लोकाग्र में प्रतिष्ठित होते हैं–मोक्ष प्राप्त करते हैं ।

सूत्र - ५२

भगवन् ! भावितात्मा अनगार केवलि-समुद्घात द्वारा आत्मप्रदेशों को देह से बाहर निकाल कर, क्या समग्र लोक का स्पर्श कर स्थित होते हैं ? हाँ, गौतम ! स्थित होते हैं । भगवन् ! क्या उन निर्जरा-प्रधान पुद्गलों से समग्र लोक स्पृष्ट होता है ? हाँ, गौतम ! होता है । भगवन् ! छद्मस्थ, विशिष्ट ज्ञानरहित मनुष्य क्या उन निर्जरा-पुद्गलों के वर्णरूप से वर्ण को, गन्धरूप से गन्ध को, रस रूप से रस को तथा स्पर्शरूप से स्पर्श को जानता है ? देखता है ? गौतम ! ऐसा संभव नहीं है ।

भगवन् ! यह किस अभिप्राय से कहा जाता है कि छद्मस्थ मनुष्य उन खिरे हुए पुद्गलों के वर्ण रूप वर्ण को, गन्ध रूप से गन्ध को, रस रूप से रस को तथा स्पर्श रूप से स्पर्श को जरा भी नहीं जानता, नहीं देखता । गौतम ! यह जम्बूद्वीप सभी द्वीपों तथा समुद्रों के बिलकुल बीच में स्थित है । यह आकार में सबसे छोटा है, गोल है। तैल में पके हुए पूए के समान, रथ के पहिये के सदृश, कमल-कर्णिका की तरह और पूर्ण चन्द्रमा के आकार के समान गोलाकार है । एक लाख योजन-प्रमाण लम्बा-चौड़ा है । इसकी परिधी तीन लाख सोलह हजार दौ सौ योजन तीन कोस एक सौ अट्ठाईस धनुष तथा साढ़े तेरह अंगुल से कुछ अधिक है । एक अत्यधिक ऋद्धिमान्,

द्युतिमान्, अत्यन्त बलवान्, महायशस्वी, परम सुखी, बहुत प्रभावशाली देव चन्दन, केसर आदि विलेपनोचित सुगन्धित द्रव्य से परिपूर्ण डिब्बा लेता है, लेकर उसे खोलता है, उस सुगन्धित द्रव्य को सर्वत्र बिखेरता हुआ तीन चुटकी बजाने जितने समय में समस्त जम्बू द्वीप को इक्कीस परिक्रमाएं कर तुरन्त आ जाता है ।

समस्त जम्बूद्वीप उन घ्राण-पुद्गलों से स्पृष्ट होता है ? हाँ, गौतम ! होता है । भगवन् ! क्या छद्मस्थ मनुष्य घ्राण-पुद्गलों को वर्ण रूप से वर्ण आदि को जरा भी जान पाता है ? देख पाता है ? गौतम ! ऐसा संभव नहीं है । गौतम ! इस अभिप्रा य से यह कहा जाता है कि छद्मस्थ मनुष्य उन खिरे हुए पुद्गलों के वर्ण रूप से वर्ण आदि को जरा भी नहीं जानता, नहीं देखता । आयुष्मान् श्रमण ! वे पुद्गल इतने सूक्ष्म कहे गए हैं । वे समग्र लोक का स्पर्श कर स्थित रहते हैं ।

भगवन् ! केवली किस कारण समुद्घात करते हैं–गौतम ! केवलियों के वेदनीय, आयुष्य, नाम तथा गोत्र–ये चार कर्मांश अपरिक्षीण होते हैं, उनमें वेदनीय कर्म सबसे अधिक होता है, आयुष्य कर्म सबसे कम होता है, बन्धन एवं स्थिति द्वारा विषम कर्मों को वे सम करते हैं । यों बन्धन और स्थिति से विषम कर्मों को सम करने हेतु केवली आत्मप्रदेशों को विस्तीर्ण करते हैं, समुद्घात करते हैं ।

सूत्र - ५३

भगवन् ! क्या सभी केवली समुद्घात करते हैं ? गौतम ! ऐसा नहीं होता । समुद्घात किये बिना ही अनन्त केवली, जिन (जन्म), वृद्धावस्था तथा मृत्यु से विप्रमुक्त होकर सिद्धि गति को प्राप्त हुए हैं ।

सूत्र - ५४

भगवन् ! आवर्जीकरण का प्रक्रियाक्रम कितने समय का कहा गया है ? गौतम ! वह असंख्येय समयवर्ती अन्तर्मुहूर्त्त का कहा गया है । भगवन् ! केवली-समुद्घात कितने समय का कहा गया है ? गौतम ! आठ समय का है । जैसे–पहले समय में केवली आत्मप्रदेशों को विस्तीर्ण कर दण्ड के आकार में करते हैं । दूसरे समय में वे आत्मप्रदेशों को विस्तीर्ण कर कपाटाकार करते हैं । तीसरे समय में केवली उन्हें विस्तीर्ण कर मन्थनाकार करते हैं । चौथे समय केवली लोकशिखर सहित इनके अन्तराल की पूर्ति हेतु आत्मप्रदेशों को विस्तीर्ण करते हैं । पाँचवे समय में अन्तराल स्थित आत्मप्रदेशों को प्रतिसंहृत करते हैं । छठे समय में मथानी के आकार में अवस्थित आत्म-प्रदेशों को, सातवें समय में कपाट के आकार में स्थित आत्मप्रदेशों को और आठवें समय में दण्ड के आकार में स्थित आत्मप्रदेशों को प्रतिसंहृत करते हैं । तत्पश्चात् वे (पूर्ववत्) शरीरस्थ हो जाते हैं । भगवन् ! समुद्घातगत केवली क्या मनोयोग का, वचन-योग का, क्या काय-योग का प्रयोग करते हैं ? गौतम ! वे मनोयोग का प्रयोग नहीं करते । वचन-योग का प्रयोग नहीं करते । वे काय-योग का प्रयोग करते हैं ।

भगवन् ! काय-योग को प्रयुक्त करते हुए क्या वे औदारिक-शरीर-काय-योग का प्रयोग करते हैं ? क्या औदारिक-मिश्र-औदारिक और कार्मण-दोनों शरीरों से क्रिया करते हैं ? क्या वैक्रिय शरीर से क्रिया करते हैं ? क्या वैक्रिय-मिश्र-कार्मण-मिश्रित या औदारिक-मिश्रित वैक्रिय शरीर से क्रिया करते हैं ? क्या आहारक शरीर से क्रिया करते हैं ? क्या आहारक-मिश्र–औदारिक-मिश्रित आहारक शरीर से क्रिया करते हैं ? क्या कार्मण शरीर से क्रिया करते हैं ? अर्थात् सात प्रकार के काययोग में से किसी काययोग का प्रयोग करते हैं ? गौतम ! वे औदारिक-शरीर-काय-योग का प्रयोग करते हैं, औदारिक-मिश्र शरीर से भी क्रिया करते हैं । वे वैक्रिय शरीर से क्रिया नहीं करते । वैक्रिय-मिश्र शरीर से क्रिया नहीं करते । आहारक शरीर से क्रिया नहीं करते । आहारक-मिश्र शरीर से भी क्रिया नहीं करते । पर औदारिक तथा औदारिक-मिश्र के साथ-साथ कार्मण-शरीर-काय-योग का भी प्रयोग करते हैं । पहले और आठवें समय में वे औदारिक शरीर-काययोग का प्रयोग करते हैं । दूसरे, छठे और सातवें समय में वे औदारिक मिश्र शरीर-काययोग का प्रयोग करते हैं । तीसरे, चौथे और पाँचवे समय में वे कार्मण शरीर-काययोग का प्रयोग करते हैं ।

भगवन् ! क्या समुद्घातगत कोई सिद्ध होते हैं ? बुद्ध होते हैं ? मुक्त होते हैं ? परितिर्वृत्त होते हैं ? सब दुःखों का अन्त करते हैं ? गौतम ! ऐसा नहीं होता । वे उससे वापस लौटते हैं । लौटकर अपने ऐहिक शरीर में आते हैं । तत्पश्चात् मनोयोग, वचनयोग तथा काययोग का भी प्रयोग करते हैं–भगवन् ! मनोयोग का उपयोग करते

हुए क्या सत्य मनोयोग का उपयोग करते हैं ? क्या मृषा मनोयोग का उपयोग करते हैं ? क्या सत्य-मृषा मनोयोग का उपयोग करते हैं ? क्या अ-सत्य–अ-मृषा व्यवहार-मनोयोग का उपयोग करते हैं ? गौतम ! वे सत्य मनोयोग का उपयोग करते हैं । असत्य मनोयोग का उपयोग नहीं करते । सत्य-असत्य-मिश्रित मनोयोग का उपयोग नहीं करते । किन्तु अ-सत्य-अमृषा-मनोयोग–व्यवहार मनोयोग का वे उपयोग करते हैं ।

भगवन् ! वाक्योग को प्रयुक्त करते हुए क्या सत्य वाक्-योग को प्रयुक्त करते हैं ? मृषा-वाक्-योग को प्रयुक्त करते हैं ? सत्य-मृषा-वाक् योग को प्रयुक्त करते हैं ? क्या असत्य-अमृषा-वाक्-योग को प्रयुक्त करते हैं ? गौतम ! वे सत्य-वाक्-योग को प्रयुक्त करते हैं । मृषा-वाक्-योग को प्रयुक्त नहीं करते । न वे सत्य-मृषा-वाक्-योग को ही प्रयुक्त करते हैं । वे असत्य-अमृषा-वाक्-योग–व्यवहार-वचन-योग को भी प्रयुक्त करते हैं । वे काययोग को प्रवृत्त करते हुए आगमन करते हैं, स्थित होते हैं–बैठते हैं, लेटते हैं, उल्लंघन करते हैं, प्रलंघन करते हैं, उत्क्षेपण करते हैं तथा तिर्यक् क्षेपण करते हैं । अथवा ऊंची, नीची और तीरछी गति करते हैं । काम में ले लेने के बाद प्रातिहारिक आदि लौटाते हैं ।

सूत्र - ५५

भगवन् ! क्या सयोगी सिद्ध होते हैं ? यावत् सब दुःखों का अन्त करते हैं ? गौतम ! ऐसा नहीं होता । वे सबसे पहले पर्याप्त, संज्ञी, पंचेन्द्रिय जीव के जघन्य मनोयोग के नीचे के स्तर से असंख्यातगुणहीन मनोयोग का निरोध करते हैं । उसके बाद पर्याप्त बेइन्द्रिय जीव के जघन्य वचन-योग के नीचे के स्तर से असंख्यातगुणहीन वचन-योग का निरोध करते हैं । तदनन्तर अपर्याप्त-सूक्ष्म पनक जीव के जघन्य योग के नीचे के स्तर से असंख्यात गुण हीन काय-योग का निरोध करते हैं ।

इस उपाय या उपक्रम द्वारा वे पहले मनोयोग का निरोध करते हैं । फिर वचन-योग का निरोध करते हैं । काय-योग का निरोध करते हैं । फिर सर्वथा योगनिरोध करते हैं । इस प्रकार–योग निरोध कर वे अयोगत्व प्राप्त करते हैं । फिर ईषत्स्पृष्ट पाँच ह्रस्व अक्षर के उच्चारण के असंख्यात कालवर्ती अन्तर्मुहूर्त्त तक होने वाली शैलेशी अवस्था प्राप्त करते हैं । उस शैलेशी-काल में पूर्वविरचित गुण-श्रेणी के रूप में रहे कर्मों को असंख्यात गुण-श्रेणियों में अनन्त कर्मांशों के रूप में क्षीण करते हुए वेदनीय आयुष्य, नाम तथा गोत्र–एक साथ क्षय करते हैं । फिर औदारिक, तैजस तथा कार्मण शरीर का पूर्ण रूप से परित्याग कर देते हैं । वैसा कर ऋजु श्रेणि प्रतिपन्न हो अस्पृश्यमान गति द्वारा एक समय में ऊर्ध्व-गमन कर साकारोपयोग में सिद्ध होते हैं । वहाँ सादि, अपर्यवसित, अशरीर, जीवधन, आत्मप्रदेश युक्त, ज्ञान तथा दर्शन उपयोग सहित, निष्ठितार्थ, निरेजन, नीरज, निर्मल, वितिमिर, विशुद्ध, शाश्वतकाल पर्यन्त संस्थित रहते हैं ।

भगवन् ! वहाँ वे सिद्ध होते हैं, सादि–अपर्यवसित, यावत् शाश्वतकाल पर्यन्त स्थित रहते हैं–इत्यादि आप किस आशय से फरमाते हैं ? गौतम ! जैसे अग्नि से दग्ध बीजों की पुनः अंकुरों के रूप में उत्पत्ति नहीं होती, उसी प्रकार कर्म-बीज दग्ध होने के कारण सिद्धों की भी फिर जन्मोत्पत्ति नहीं होती । गौतम ! मैं इसी आशय से यह कह रहा हूँ कि सिद्ध सादि, अपर्यवसित... होते हैं । भगवन् ! सिद्ध होते हैं ? गौतम ! वे वज्र-ऋषभ-नाराच संहनन में सिद्ध होते हैं । भगवन् ! सिद्ध होते हुए जीव किस संस्थान में सिद्ध होते हैं ? गौतम ! छह संस्थानों में से किसी भी संस्थान में सिद्ध हो सकते हैं । भगवन् ! सिद्ध होते हुए जीव कितनी अवगाहना में सिद्ध होते हैं ? गौतम ! जघन्य सात हाथ तथा उत्कृष्ट–पाँच सौ धनुष की अवगाहना में सिद्ध होते हैं । भगवन् ! सिद्ध होते हुए जीव कितने आयुष्य में सिद्ध होते हैं ? गौतम ! कम से कम आठ वर्ष से कुछ अधिक आयुष्य में तथा अधिक से अधिक करोड़ पूर्व के आयुष्य में सिद्ध होते हैं ।

भगवन् ! क्या इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नीचे सिद्ध निवास करते हैं ? नहीं, ऐसा अर्थ–ठीक नहीं है । रत्नप्रभा के साथ-साथ शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पङ्कप्रभा, तमःप्रभा तथा तमस्तमःप्रभा के सम्बन्ध में ऐसा ही समझना चाहिए । भगवन् ! क्या सिद्ध सौधर्मकल्प के नीचे निवास करते हैं ? नहीं, ऐसा अभिप्राय ठीक नहीं है । ईशान, सनत्कुमार यावत् अच्युत तक, ग्रैवेयक विमानों तथा अनुत्तर विमानों के सम्बन्ध में ऐसा ही समझना चाहिए । भगवन् ! क्या सिद्ध ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी के नीचे निवास करते हैं ? नहीं, ऐसा अभिप्राय ठीक नहीं है ।

भगवन् ! फिर सिद्ध कहाँ निवास करते हैं ? गौतम ! इस रत्नप्रभा भूमि के बहुसम रमणीय भूभाग से ऊपर, चन्द्र, सूर्य, ग्रहगण, नक्षत्र तथा तारों के भवनों से बहुत योजन, बहुत सैकड़ों योजन, बहुत हजारों योजन, बहुत लाखों योजन, बहुत करोड़ों योजन तथा बहुत क्रोड़ाक्रोड़ योजन से ऊर्ध्वतर सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म, लान्तक, महाशुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण, अच्युत कल्प तथा तीन सौ अठारह ग्रैवेयक विमान-आवास से भी ऊपर विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिद्ध महाविमान के सर्वोच्च शिखर के अग्रभाग से बारह योजन के अन्तर पर ऊपर ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी कही गई है । वह पृथ्वी पैंतालीस लाख योजन लम्बी तथा चौड़ी है । उसकी परिधि एक करोड़ बयालीस लाख तीस हजार दो सौ उनचास योजन से कुछ अधिक है । ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी अपने ठीक मध्य भाग में आठ योजन क्षेत्र में आठ योजन मोटी है । तत्पश्चात् मोटेपन में क्रमशः कुछ कुछ कम होती हुई सबसे अन्तिम किनारों पर मक्खी की पाँख से पतली है । उन अन्तिम किनारों की मोटाई अंगुल के असंख्यातवें भाग के तुल्य है ।

ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी के बारह नाम बतलाए गए हैं–ईषत्, ईषत्प्राग्भारा, तनु, तनुतनु, सिद्धि, सिद्धालय, मुक्ति, मुक्तालय, लोकाग्र, लोकाग्रस्तूपिका, लोकाग्रपतिबोधना और सर्वप्राणभूतजीवसत्त्वसुखावहा । ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी दर्पणतल के जैसी निर्मल, सोल्लिय पुष्प, कमलनाल, जलकण, तुषार, गाय के दूध तथा हार के समान श्वेत वर्णयुक्त है । वह उलटे छत्र जैसे आकार में अवस्थित है । वह अर्जुन स्वर्ण जैसी द्युति लिये हुए है । वह आकाश या स्फटिक जैसी स्वच्छ, श्लक्ष्ण कोमल परमाणु-स्कन्धों से निष्पन्न होने के कारण कोमल तन्तुओं से बुने हुए वस्त्र के समान मुलायम, लष्ट, ललित आकृतियुक्त, घृष्ट, मृष्ट, नीरज, निर्मल, निष्पंक शोभायुक्त, समरीचिका, प्रासादीय, दर्शनीय, अभिरूप तथा प्रतिरूप है । ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी के तल से उत्सोधांगुल द्वारा एक योजन पर लोकान्त है । उस योजन के ऊपर के कोस के छठे भाग पर सिद्ध भगवान्, जो सादि, अपर्यवसित हैं, जो जन्म, बुढ़ापा, मृत्यु आदि अनेक योनियों की वेदना, संसार के भीषण दुःख, पुनः पुनः होने वाले गर्भवास रूप प्रपंच अतिक्रान्त कर चूके हैं, अपने शाश्वत, भविष्य में सदा सुस्थिर स्वरूप में संस्थित रहते हैं ।

सूत्र – ५६-५९

सिद्ध किस स्थान पर प्रतिहत हैं–वे कहाँ प्रतिष्ठित हैं? वे वहाँ से देह को त्याग कर कहाँ जाकर सिद्ध होते हैं?

सिद्ध लोक के अग्रभाग में प्रतिष्ठित हैं अतः अलोक में जाने में प्रतिहत हैं । इस मर्त्यलोक में ही देह का त्याग कर वे सिद्ध-स्थान में जाकर सिद्ध होते हैं ।

देह का त्याग करते समय अन्तिम समय में प्रदेशधन आकार, वही आकार सिद्ध स्थान में रहता है । अन्तिम भव में दीर्घ या ह्रस्व जैसा भी आकार होता है, उससे तिहाई भाग कम में सिद्धों की अवगाहना होती है ।

सूत्र – ६०-६३

सिद्धों की उत्कृष्ट अवगाहना तीन सौ तैंतीस धनुष तथा तिहाई धनुष होती है, सर्वज्ञों ने ऐसा बतलाया है सिद्धों की मध्यम अवगाहना चार हाथ तथा तिहाई भाग कम एक हाथ होती है, ऐसा सर्वज्ञों ने निरूपित किया है। सिद्धों की जघन्य अवगाहना एक हाथ तथा आठ अंगुल होती है, ऐसा सर्वज्ञों द्वारा भाषित है ।

सिद्ध अन्तिम भव की अवगाहना से तिहाई भाग कम अवगाहनायुक्त होते हैं । जो वार्धक्य और मृत्यु से विप्रमुक्त हो गए हैं उनके संस्थान किसी भी लौकिक आकार से नहीं मिलता ।

सूत्र - ६४

जहाँ एक सिद्ध है, वहाँ भव-क्षय हो जाने से मुक्त हुए अनन्त सिद्ध हैं, जो परस्पर अवगाढ़ हैं । वे सब लोकान्त का संस्पर्श किए हुए हैं ।

सूत्र - ६५

(एक-एक) सिद्ध समस्त आत्म-प्रदेशों द्वारा अनन्त सिद्धों का सम्पूर्ण रूप में संस्पर्श किये हुए हैं । और उनसे भी असंख्यातगुण सिद्ध ऐसे हैं जो देशों और प्रदेशों से–एक-दूसरे में अवगाढ़ हैं ।

सूत्र - ६६

सिद्ध शरीर रहित, जीवघन तथा दर्शनोपयोग एवं ज्ञानोपयोग में उपयुक्त हैं । यों साकार तथा अनाकार–चेतना सिद्धों का लक्षण है ।

सूत्र - ६७

वे केवल ज्ञानोपयोग द्वारा सभी पदार्थों के गुणों एवं पर्यायों को जानते हैं तथा अनन्त केवलदर्शन द्वारा सर्वतः समस्त भावों को देखते हैं ।

सूत्र – ६८-/७०

सिद्धों को जो अव्याबाध, शाश्वत सुख प्राप्त है, वह न मनुष्यों को प्राप्त है और न समग्र देवताओं को ही तीन काल गुणित अनन्त देव-सुख, यदि अनन्त बार वर्गवर्गित किया जाए तो भी वह मोक्ष-सुख के समान नहीं हो सकता । एक सिद्ध के सुख को तीनों कालों से गुणित करने पर जो सुख-राशि निष्पन्न हो, उसे यदि अनन्त वर्ग से विभाजित किया जाए, जो सुख-राशि भागफल के रूप में प्राप्त हो, वह भी इतनी अधिक होती है कि सम्पूर्ण आकाश में समाहित नहीं हो सकती ।

सूत्र – ७१, ७२

जैसे कोई असभ्य वनवासी पुरुष नगर के अनेकविध गुणों को जानता हुआ भी वन में वैसी कोई उपमा नहीं पाता हुआ उस के गुणों का वर्णन नहीं कर सकता । उसी प्रकार सिद्धों का सुख अनुपम है । उसकी कोई उपमा नहीं है । फिर भी विशेष रूप से उपमा द्वारा उसे समझाया जा रहा है, सूनें ।

सूत्र – ७३, ७४

जैसे कोई पुरुष अपने द्वारा चाहे गए सभी गुणों–विशेषताओं से युक्त भोजन कर, भूख-प्यास से मुक्त होकर अपरिमित तृप्ति का अनुभव करता है, उसी प्रकार– सर्वकालतृप्त, अनुपम शान्तियुक्त सिद्ध शाश्वत तथा अव्याबाध परम सुख में निमग्न रहते हैं ।

सूत्र - ७५

वे सिद्ध हैं, बुद्ध हैं, पारगत हैं, परंपरागत हैं, उत्मुक्त-कर्मकवच हैं, अजर हैं, अमर हैं तथा असंग हैं ।

सूत्र - ७६

सिद्ध सब दुःखों को पार कर चूके हैं जन्म, बुढ़ापा तथा मृत्यु के बन्धन से मुक्त हैं । निर्बाध, शाश्वत सुख का अनुभव करते हैं ।

सूत्र - ७७

अनुपम सुख-सागर में लीन, निर्बाध, अनुपम मुक्तावस्था प्राप्त किये हुए सिद्ध समग्र अनागत काल में सदा प्राप्तसुख, सुखयुक्त अवस्थित रहते हैं ।

१२ औपपातिक–उपांगसूत्र–१–पूर्ण

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

પૂજ્યપાદ્ શ્રી આનંદ–ક્ષમા–લલિત–સુશીલ–સુધર્મસાગર ગુરૂભ્યો નમ:

१२

औपपातिक

आगमसूत्र हिन्दी अनुवाद

[अनुवादक एवं संपादक]

आगम दीवाकर मुनि दीपरत्नसागरजी

[M.Com. M.Ed. Ph.D. श्रुत महर्षि]

વેબ સાઇટ:– (1) www.jainelibrary.org (2) deepratnasagar.in

ઇમેલ એડ્રેસ:- jainmunideepratnasagar@gmail.com મોબાઇલ 09825967397